ओ३म्

पद्यमय पातञ्जल प्रवचन

9.3

रचियता

रामनारायण माथुर "ओ३म् प्रेमी"

अपनी बात

श्रद्धेय अग्रज स्वामी ओ३म् प्रेमीजी जीवन-पर्यन्त आत्म-साधना और साहित्य-सृजन में संलग्न रहे। मूलतः शाजापुर (म.प्र.) के निवासी श्री रामनारायणजी माथुर कैशोर और गार्हस्थ्य में 'पीड़ित' उपनाम से और तृतीयाश्रमी तथा चतुर्थाश्रमी होने पर "ओ३म्-प्रेमी" उपनाम से प्रसिद्ध हुए। अध्यवसाय से वकील, कृषक तथा आर्य समाज के कर्मठ निष्ठावान प्रचारक होते हुए भी साहित्यिक अभिरूचि ऐसी कि स्वाध्याय ओर लेखन निरन्तर चलता रहा। कुछ पुस्तकें तो उनके जीवन काल में ही प्रकाशित हो गई किन्तु विपुल साहित्य अभी भी अप्रकाशित ही है। संभवतः कभी कोई आर्य साहित्य-प्रेमी सज्जन या संस्था इनके प्रकाशन द्वारा लोगों को लाभान्वित कर सके।

आजकल योग की दिशा में लोगों की रूचि बढ़ रही है अतः महार्षि पतंजलि के मुख्य ग्रंथ 'योग दर्शन' का यह हिन्दी पद्यानुवाद बहुत उपयोगी होगा।

वैसे तो योग दर्शन के अनेक भाष्य हुए हैं किन्तु संभवतः हिन्दी में पद्यरूप में यह प्रथम बार ही प्रकाशित हुआ है। स्वर्गीय ओ३म् प्रेमीजी की संयोजना के अनुसार ही उसी रूप में यह सद्ग्रंथ प्रस्तुत है।

यह भी एक सुयोग ही है कि उज्जैन सिंहस्थ 2016 के अंतर्राष्ट्रीय मेले के अवसर पर यह प्रकाशन हो रहा है ताकि अधिकाधिक लोगों को इसका सहज ही लाभ मिल सके।

आशा है यह पद्यमय-पातंजल योगदर्शन विद्वत्जनों और सामान्य जनों के लिए सम्यक रूप से उपयोगी होगा।

चौधरी राज नारायण माथुर
(से.नि. व्याख्याता, शाजापुर म.प्र.)

ओ३म्

पद्यमय पताञ्जल-प्रवचन

अर्थात्

महर्षि पतञ्जलि प्रणीत योगदर्शन की

हिन्दी पद्य परिणति

(जिसमें प्रमुखतया स्वामी ओ३म् आनंदतीर्थजी के

'सांख्य-योग सार'

से भरपूर निर्देशन प्राप्त किया गया है)

पद्यानुवाद-कर्ता

रामनारायण माथुर

"ओ३म् प्रेमी"

शाजापुर

भूमिका लेखक

श्रद्धेय स्वामी काव्यानन्दजी महाराज

प्रकाशक-
ओ३म् प्रेमी,
साहित्य प्रकाशन समिति
26, चित्रगुप्त मार्ग, लालपुरा
शाजापुर (म.प्र.)
फोन- 229608

मुद्रक-
तखतवाला ग्राफिक्स
छोटा हुसैनी चौक, शाजापुर (म.प्र.)
फोन: 07364-226163,

प्रथम संस्करण- मई 2016

मूल्य-50 रू.

ओ३म्

भूमिका

[लेखक-श्री योगिराज स्वामी काव्यानन्दजी सरस्वती, परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य- (व्याकरण, निरूक्त, साहित्य, दर्शन, आयुर्वेद व्यायाम) एम.ए. (संस्कृत, हिन्दी, राजनीति, संगीत) पी. एच.डी. 'वेद में सोम रस', संस्थापक, दयानंद सेवाश्रम, वेदमाताधाम, योग साधाना केन्द्र, काव्यानन्द गुफा, देलवाढ़ा रोड, आबू पर्वत (राजस्थान)]

उस परमेश्वर जगदाचार ओङ्कार की रचना में मानव-मन्दिर की रचना सर्वश्रेष्ठ है। परमपिता परमात्मा ने जीवात्मा को अमूल्य शरीर रूपी प्रभु प्राप्ति का साधन प्रदान किया है। वेद ने इसे 'अयोध्या' पुरी से सम्बोधित किया है। भगवान् ने इस साधना-मन्दिर का निर्माण किया, सो भी ऐसी कारीगरी से कि आप भी इस मन्दिर के एक कोने में छुपकर बैठ गया किन्तु कमाल यह है कि स्वामी बनकर नहीं बैठा बल्कि, स्वामी जीवात्मा को बना कर स्वयं निरीक्षक रूप होकर विराजमान हो गया और आत्मा परमात्मा का मिलन केवल इसी मन्दिर में होता है।

बाहर दृष्टि करने से उसकी रचना का दर्शन और अन्दर दृष्टि से प्रभु का दर्शन ! चाहे संसार में भटकलो, चाहे आनन्दमय की गोद में आनन्द लेलो।

जीवात्मा का, मानव जन्म पाना ही प्रभु प्राप्ति का मुख्य साधन है और लक्ष्य भी यही है, यही धर्म है क्योंकि वैशेषिक दर्शन में कणाद मुनि ने भी संकेत किया है कि "सतोऽभुदय निः श्रेयस् सिद्धिः सधर्मः"।

किन्तु इस रहस्य को और प्रभु तक पहुँचने के वेदानुकूल मार्ग को प्रस्तुत किया है, महार्षि पतंजलि ने अपने योगशास्त्र में जहाँ उन्होंने ईश्वर के गुणों का वर्णन किया है-

"क्लेश, कर्म एवं विपाक से
आशय से भी रहित रहे।
पुरुष-विशेष वहीं ईश्वर है
निराकारता नित्य गहे ।।
(ओ३म् प्रेमी)

पर, ईश्वर से अधिक है, अहो,
चित्तवृत्तियों का वर्णन ।
उनके निरोधकी भी व्याख्या की है
कर अनुभूत कथन ।। (ओ.प्रे.)

अर्थात्- परमात्मा से अधिक परमात्मा की प्राप्ति के साधन-इस प्रकार यम से लेकर समाधि तक- का अत्यंत ही सरल रूप से वर्णन हुआ है और इस "दर्शन" का नाम ही "योग" अर्थात "आत्मा-परमात्मा का मिलन" रखा गया है ।

इस पर विपुल साधको, विद्वानों योगियों ने रहस्योद्घाटन संहित वर्णन किये हैं। कबीर, गोरख आदि ने अपनी धुक्कड़ी भाषा में (वाणियों द्वारा) भी रहस्यों को प्रकट करने का प्रयास किया है।

किन्तु श्री रामनारायणजी माथुर 'ओ३म् प्रेमी' प्रतिभावन् आर्य सन्यासी श्री सूर्यानन्दजी के सुपुत्र ने प्रारंभ से लेकर अन्त तक पातंजल योगशास्त्र के प्रत्येक सूत्र के भावार्थों को हिन्दी साहित्य में कविता के रूप में प्रस्तुत किया है।

"पद्यमय पातंजल प्रवचन" के नाम से श्री ओ३म् प्रेमी जी की काव्य साधना, साधक जगत् को अमूल्य देन है। यह रचना बहुत कुछ अंशो में साधकों को योगाभ्यास की और आकर्षित सरलतया कर सकेगी। पद्यालास्त्रित्यकी बात ही और है, साधकों के अतिरिक्त भी हिन्दी साहित्य प्रेमी इससे अवश्य लाभान्वित होगें- ऐसा मुझे विश्वास है।

ओ३म् प्रेमी जी अपने प्रयास में बहुत कुछ सफल बने है। मुझे आशा है कि पाठक गण इससे लाभ उठाऐगे। समयाभाव के कारण इसकी यह भूमिका मैने लघु रूप में प्रस्तुत की है- अस्तु।

ओ३म् शम्
गुरूपूर्णिमा,
(23-7-75 ई.)

हितचिन्तक
स्वामी काव्यानन्द सरस्वती
(आबू पर्वत)

ओ३म्

प्राक्कथन (प्रणेता की ओर से)

"पद्यमय पातंजल प्रवचन" की भूमिका किन्हीं योगीविद्वान धर्मत्मा महापुरूष से लिखवाने की मेरी हार्दिक अभिलाषा थी और जब तक ऐसा सुयोग न मिले तब तक इसका 'प्राक् कथन' भी में न लिखूंगा- यह ठान लिया था।

परम सहायक ओ३म् देव की महती कृपा से मेरी अभिलाषा अकस्म्ता अप्रत्याशित रूपेण ही तब पूरी हो गई जग योगिराज स्वामी काव्यानंदजी महाराज, शाजापुर पधारे और पूर्व परिचय तनिक सा भी न होते हुए भी बड़ी दया करके मेरे घर शुभागमन करके आतिथ्य स्वीकार किया। उसी समय मैने 'भूमिका' हेतु निवेदन किया, अति हर्ष पूर्वक मेरी प्रार्थना उन्होने मानी और कुछ समय के पश्चात अपने आबू पर्वत स्थित आश्रम से भूमिका लिख भेजी-इसके लिये पूज्य स्वामीजी महाराज का मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ और उन्हे बारबार धन्यवाद देता हूँ, शिरसा नमन भी करता हूं।

यह भी सुखद संयोग रहा कि श्रद्धेय स्वामी जी महाराज का सन्यास ग्रहण के पूर्व मेरे पिताजी (स्व. स्वामी सूर्यानन्दजी महाराज) से अच्छा परिचय रहा जैसाकि स्वयं श्रद्धेय स्वामी जी ने चर्चा में बतलाया। इस नाते भी मुझ पर उनका वात्सल्य अधिक बढ़ गया और मेरी श्री श्रद्धा उनके प्रति कुछ वृद्धिंगत ही हुई । अस्तु-

न जाने क्यों, मुझे बचपन से ही योगासनों में रूचि रही है। जब कुछ समझ आई तब योग शास्त्र के अनेकों भाष्य पढ़े। उनमें ऐसा मन लगता था कि मैं स्वयं चकित रह जाता था।

एक दिन यह विचार सहसा ही आया कि हिन्दी पद्य में योग सूत्रों को अनूदित किया जाय।

सन् 1962 में महात्मा आनन्द स्वामीजी महाराज से रतलाम में भेंट हुई जहां आर्यसमाज की ओर से मुझे भी वेद मंत्रों के मेरे किये हुए पद्यानुवाद को जनता में सुनाने हेतु उपदेशक रूप में आमंत्रित किया गया था। एक ही मंच से मैने व उक्त श्रद्धेश्वर ने प्रवचन किये । मैने समय लेकर एकान्त में मिलना चाहा, कृपापूर्वक मुझे 1.30 घंटे का समय (दुपहरी में) उन्होने दिया।

उस बीच जो अत्यन्त महत्वपूर्ण बाते हुई उनमें अधिकांश योग विषयक ही थी। मेरे साथ मेरा ज्येष्ठ पुत्र (12 वर्षीय) भी था, उसके बारे में मैंने कुछ कहना व पूछना चाहा तो स्वामी जी ने मना कर दिया, उसे भी चुपा रहने का आदेश दिया। वह बड़ा दुःखी हुआ।

यह भेद तो 1967 में खुला जब वह जय प्रकाश आर्य 'जयन्त' कुछ दिनों बीमार रहकर 17 बरस की आयु में चल बसा। मेरी समझ में आ गया कि योगी आनन्द स्वामी जी महाराज ने उसकी अल्पायु का अवश्यमेव आभास कर लिया होगा, भविष्य का बोध उन्हें हो गया होगा–एक योगसूत्र के अनुसार।

मुझे ऑखों में जलन बहुधा होती थी स्वामी जी ने पूछा कि शीर्षासन में ऑखे खुली रखते है क्या आप ? मैंने कहा कि हॉ भगवान। तो फर्माया कि ओहूम प्रेमी जी आखें बंद रखा करें और जबतक गृहस्थ है तब तक अधिक से अधिक 5 मिनिट तक ही शीर्षासन किया करे।

मैंने दोनो आदेशों का पालन करना प्रारम्भ किया और मेरी जलन मिट गई। (पहले में 15–20 मिनिट तक शीर्षासन करता था) यही नही अन्य भी प्राणयामादि विषयक सत्परामर्श मुझे दिये उन्हें पाकर में निहाल हुआ। तभी मैंने पद्यानुवाद का यह विचार भी उनकी सेवा में प्रस्तुत किया था तो बड़े प्रोत्साहन पूरित शब्दों में कहा कि "यह काम आप अवश्य करें। आपका वेदमंत्रों का पद्यानुवाद विशेषया गायत्रीमंत्र और शान्तिपाठ वाले मंत्र का, मुझे बहुत भाये। मेरा आशीर्वाद है कि आप योगशास्त्र का पद्यानुवाद करने में सफल होंगे।"

और उनका आशीर्वाद वास्तव में सही हुआ। फलतः यह पद्यानुवाद आपके सामने है।

गुजरात के स्वामी शिवानन्द जी म.प्र. के स्वामी सर्वानन्द जी इत्यादि कितने ही योगियों ने समय समय पर मेरा उत्साह बढ़ाया है– विशेषकर योगाचार्य श्री बल्देव प्रसाद जी परवर्ती नाम स्वामी शक्तीश्वरानन्द सरस्वती जी (देवास वाले) ने इन सभी का में अत्यन्त आभारी हूँ। स्वामी ओ३म् आनन्द तीर्थ जी का भी ऋणी हूँ जिनके सांख्य योगसार से मैंने भरपूर निर्देशन किया है।

महर्षिदयानन्द सरस्वती के शिष्य योगीराज जी, स्वामी लक्ष्मणानन्द जी महाराज एक दिन ट्रेन में अकस्मात् मेरे पूज्य पिता जी को मिले थे–पिता श्री सुनाया करते थे कि मेरे पूछने पर उन्होंने दिव्य दृष्टि से सब कुछ देखकर कह दिया था तुम योगसिद्ध नही हो सकते क्योंकि तुम रसना को नही जीत सके, हॉ तुम्हारा पुत्र इस और बढ़ सकेगा। मुझे योग संबंधी ग्रंथो में अत्यधिक रूचि लेते देखकर बहुधा यह प्रसंग वे सुनातें थे उक्त स्वामी जी कृत ध्यानयोग प्रकाश मेरे पूज्य पिता जी को बहुत पसंद था। उनके जीवनकाल में ही मैंने उस ग्रन्थ को 2–3 बार पढ़ा किन्तु उसका नवनीत निकालकर पद्यरूप देने का विचार

पूज्यपिता जी के (1/1/1960 को) देहान्त हो जाने के पश्चात् ही आया और कार्यरूप में परिपात भी हो गया "पद्यमय पातंजल प्रवचन" क प्रणयन से भी बढ़कर सुख मुझे ध्यानयोग प्रकाश के नवनीत को पद्यरूप देने महुंआ तथा आत्मदृष्टि भी बहुत मिली (यद्यपि इसी में संमान वह भी अभी अप्रकाशित है। स्वामी काव्यानंद के समान ही कोई योगी जब उसकी भूमिका लिखने को उपलब्ध होंगे तब ही में उसका प्राक्कथन लिखूँगा यह ठान रखा है, अस्तु।)

कुछ अप्रासंगिक-सी बात बीच में लिख दी इसके लिये कृपया क्षमा करे-जानकारी देने का लोभ मैं संवरण नही कर सका। कदाचित यह कोई अक्षम्य अपराध नही हुआ है।

यह पद्यानुवाद अर्थात् "पद्यमय पातंजल प्रवचन" कैसा बन पडा है, इस बारे में तो आप (सुविज्ञ हिन्दी प्रेमी नारि नर गण) ही सही मूल्यांकन करके समुचित निर्णय करें। इतना अवश्य लिखता हूँ कि यदि कतिपय महिला, पुरूषो को ही इसंसे यत्किंचित लाभ पहुंचा और यह उन्हें माया तो मे अपने आप को कृतार्थ समझूँगा।

शमित्यो३म्।

शरद पूर्णिमा
सं. 2034 वि.
(26 अक्टूबर 1977) बुधवार
विनम्र
रामनारायण माथुर
"ओ३म् प्रेम"
(तृतीया श्रमी) शाजापुर

समर्पण

श्रद्धेय पूज्यपाद महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज आर्य संयासी (अब दिवंगत) की पावनी स्मृति को उनकी सत्प्रेरणा और उनके शुभाशीष के फलस्वरूप निर्मिता यह कृति-

सादर सविनय
समर्पिता है।

विनीत समर्पक
रामनारायण माथुर
"ओ३म् प्रेमी" (तृतीया श्रमी)
(स्वेच्छया अवकाश ग्रहित अधिवक्ता)
चौधरी भवन, लालपुरा शाजापुर

दिनांक
29-10-1977 ई.

एक ही लम्बी कविता के रूप में पद्यमयी भूमिका
(रचयिता–ओ३म् प्रेमी तृतीयाश्रमी)

लो, पातन्ल योगशास्त्र का बतलाऊँ थोडे में सार ।
सत्साधक नारी, नर जिसका ऊहा से करले विस्तार ।। टेक।।
क्लेश, कर्म एवं विपाक से, आशय से भी रहित रहे ।
पुरूष–' विशेष वही ईश्वर है निराकारता नित्य गहे ।।
प्रकृति–लीन एवं सुमुक्त, दोनो प्रकार के मनुजो से
भिन्न क्योंकि सर्वथा मुक्त है, कभी न बंधन–कष्ट सहे ।।
वेद–ज्ञान का देनेवाला आद्याचार्य परमगुरू ही ।
तुल्य कभी कोई न होस के, उसका गौरव अमित, अपार ।।
पर , ईश्वर से अधिक है, अहो चितवृत्तियों का वर्णन ।
उनके निरोध की भी व्याख्या की है कर अनुभूत कथन
सचमूच यह विज्ञान अनूठा योग विषय का भव्य, पुनीत ।
इस के द्वारा दिया पतन्जलि ऋषि ने यह कि ज्यों दे मीत ।।
जो देता रहता है विधिवत हमें स्पष्ट, भले, संकेत–
जिनसे तन–मन–चेतन , तीनो विशुद्ध कर, हम सकें सदैव सचेत ।।
शायद ही ऐसा दर्शन हो अन्य, कही भी जगभर में ।
इतनी सही साफ राहों का दिया इशारा हो जिसमें ।।
निज प्रतिपाद्य तत्व तक जिन पर चलने से ले जाता जो ।
हर मंजिल पर भी साधक आनन्द अंशतः पाताहो ।।
इसीलिये दार्शनिक अधिकतर आर्यावर्तदेश वासी –
युगयुग से मान्यता इसे देते आ रहे सतत, साभार ।।
लिया चित्त कह इस दर्शन मे अन्तः करणों से आशय ।
प्रकृतिजन्य तो कहा इसे प्राधान्य सत्व का च र अतिशय ।।
है प्रतिक्षण परिणामशील भी स्वरूप जो इसका जाने ।
जब जैसा परिणामी रहले, तब वैसा पहचाने –

आत्मबोध हो उन्हें सरल फिर कुछ भी रहे नही बाधा-
उस अनन्त परमात्मा का भी मिले, अंत में पावन प्यार ।।
पॉच अवस्था कही चितकी मूढ़ नाम है पहली का ।
रहता प्रमुख तमोगुण जिसमें यह अविवेकी हो जाता ।।
दूजी, वह क्षिप्तावस्था तजिसमें यह चित्त रहे चंचल ।
इसमें रहले अधिक तमोगुण, बनने दे कब अविचल ।।
है विक्षिप्तवस्था तीजी, रहे प्रधान, सत्य जिसमें -
पिछली दोनो की तुलना में विशिष्ट, सुस्थिर सभी प्रकार ।।

चौथी है 'एकाग्रावस्था' जिसमें चित्त करे चिन्तन ।
किसी एक ही विषय का सदा, पूरा पूरा तन्मय बन ।।
यही अवस्था उपयोगी है ध्यान हेतु चौथी न्यारी ।
वही ध्यान जो योग दुर्ग की है सप्तमसीढ़ी प्यारी ।।
कही निरूद्धावस्था पंचम बने वृत्ति विरहित इसमें ।
चित्त कि जिसमें विलय पूर्णतः हो संस्कार ।।
है समाधि के लिये इसीकी उपयोगिता बडी भारी ।
यही निरूद्धवस्था रखले सु-चित्त को नित अविकारी ।।
फिर है क्लिष्टाक्लिष्ट भेद से चित्तवृत्ति के पॉच प्रकार ।
जिनमें से पहला प्रमाण जो रखे तीन का यो परिवार-
है पहला प्रत्यक्ष नामवाला, दूजा परिजन अनुमान-
'शब्द' गिनोतीसरा कुटुम्बी तीनो के परखो व्यवहार ।।
चित्तवृत्ति का प्रकार दूजा बतलाया कि विपर्यय है ।
किसी वस्तु का हो जो मिथ्याज्ञान उसीसे आशय है ।।
तीजा प्रकार विकल्प' नामक जोकि सत्य से विरहित ज्ञन ।
शब्द बोध से ही उपजाहो करा , तथ्य का, सके न भान
चौथा प्रकार निद्रा जिसमें जाग्रत वृत्ति न रह पावे ।
स्वप्नवत्तियों का अभाव हो 'तम' बनता इसका आधार।
पंचम प्रकार है स्मृति संज्ञक जिसके द्वारा मानव को

स्वानुभूत विषयों की आवे याद कि उसपर गौरव हो ।।
रहे संस्मरण ऐसा जिसमें दिखे न कोई परिवर्तन
ज्यो के त्यों अनुभूत विषय उभरे (अविकल हो सब चिन्तन)
सब व्यापार चित्त के इन पाँचों के अन्तर्भूत रहें –
क्षीणबने ये सभी वृत्तियाँ (कालान्तर में तले प्रसार) ।।
इतने पर भी नही सर्वथा अभाव उनका हो पाता ।
अवचेतन में संस्कारो का रूप तब उन्हें मिल जाता ।।
वैही तो संस्कार, चित्त में उपजा करते बारम्बार ।
धारणकर के वेश, वृत्ति का, पाते है बढ़ चढ़ प्रस्तार ।।
वृत्तिजन्य संस्कार यों रहें तथा वृत्ति, संस्कार जनित–
होता योगी का है इनपर निरसनरूपी घोर प्रहार ।।10।।
सब (सु) स्थूल वृत्तियों को एवं (सु) सूक्ष्म संस्कारों को –
अत्यधिक निरस्त करें, ऐसी मिलती शुचिशक्ति योगियों को ।।
दुष्कर कृत्य, साधनाओं से यह सम्पन्न कर चुकें जब–
योगिक उच्च भूमियों पर उनकी हो सके प्रतिष्ठा तब ।।
ऐसे मानव, चाहे नर हो या नारी हो, जरा न भेद ।
है आवश्यक यही कि रखले शिवसंकल्प, उत्तमाचार ।।11।।
चित्त, विपर्ययमय, जो हो वह क्लेशो का ही वास–स्थल ।
रहे क्लेश पाँचों प्रकार के रख उसमें आवास अटल ।।
पंचक्लेश में से पहला जो कहा अविद्या नामक है –
उसके लक्षण चार कि जिनका कुछ परिचय प्रासंगिक है ।
पहला यह लक्षण कि नित्य मानना अनित्य वस्तुओं को ।
या नश्वर को अविनश्वर कह, सहना अज्ञानो का भार ।।12।।
दूजा लक्षण है अशुद्ध को शुद्ध मानलेना (भ्रम से) ।
तीजा, 'सुख' ही मान 'दुख' को गहलेना (भारी श्रम से)
चौथा है अनात्म या जड को चेतन आत्मरूप में ही–
समझ, बने रहना उनके सेवन पूजन के प्रेमी भी ।।

इन चारो से युता 'अविद्या' प्रथम क्लेश है कही गयी ।।
शेष क्लेश का इसे क्षेत्रसम ऋषिवर ने माना (स-विचार) ।। 13।।

दूजा क्लेश'अस्मिता' है, मन तथा बुद्धि को आत्मा ही
जिसमें भ्रमवश मान, उन्हें समता देना परमात्मा की ''
तीजा क्लेश 'राग' संज्ञक, सुखजनक पदार्थो के प्रति जो-
हो तृणा या लोभ, चित्त में ., सचमुच राग कहें उसको ।।

जो प्रतिकूल साधनो पर हो दुःखी व्यक्ति में क्रोधोदय-
वह कहलाता 'द्वेष' जिसे चौथा बतलाया क्लेश-प्रकार ।।14।।

जो रहता है मानव को भय सदा मृत्यु के प्रति अतिशय ।
है अभिनिवेश उसकी संज्ञा, क्लेश पॉचवां, रखे स -भय ।।
मनुजमात्र चाहता कि अपना हो आत्यंतिक नाश नही ।
(रहले मनुष्य-तन में चेतन, तजना पड़े न देह कहीं) ।।

पर, उसकी इस इच्छा को पूरी होने दे मृत्यु कहॉ ?
तभी मरण से डरें सभीजन, अज्ञानी या जानन हार ।।15।।

इन पॉचो क्लेशो से हो संप्राप्ति, मुक्ति-सुख की, कैसे ?
यह, पातंजल दर्शन कहता, जो करना है जब जैसे ।।
है अष्टांग-योग की पूरी उसमें लिखी जानकारी ।
उनमें से प्रत्येक अंग की महिमा भी है विस्तारी ।।

हम केवल अंगो का हैं देते परिचय, संक्षिप्त, यहॉ ।
लाभादिक सबपर कविता में किस प्रकार कर सकें विचार ।।16।।

जो आठो योगांगो में से पहला यम नामक विख्यात ।
उसके भी हैं पॉच भेद (जो बने तत्वतः अब आख्यात) ।।
उन पॉचों में से पहले का (पावन) कहा 'अहिंसा' नाम ।
सत्य दूसरा और तीसरा है अस्तेय (अचौर्य, ललाम)

चौथा ब्राह्चर्य है पंचम अहा अपरिग्रह बतलाया ।
इस सबकी है की विवेचना योगशास्त्र में भले प्रकार ।।17।।

'नियम' नाम वाला जो दूजा है योगांग, रखे वह भी-

पॉच भेद जिनका देते है यहां तनिक हम परिचय ही
पाँचो में से प्रथम शौच संज्ञक, इना संतोष पुनीत।
है तीजा तप चौथे का स्वाध्याय नाम है या स्वाधीत ।।
अत्युतम अभिधान बताया पंचम का, ईश्वर प्रणिधान ।
इन्ही पॉच की सिद्धि से 'नियम' दिलाता है सुख –सार ।।18।।

आसन है योगांग तीसरा एवं चौथा, 'प्राणायाम' ।
(अति महत्वमय जिसे मानता पातंजलदर्शन अभिराम) ।।
श्वास तथा प्रश्वास का रहे (विधिवत्) जिसमें गति विच्छेद ।
'प्राणायाम' वही कहलाता (हरता जो चिति का सब खेद) ।।
इससे पा लेता है साधक प्राणशक्ति पर झट अधिकार ।।19।।

सर्वबाह्यविषयों के प्रति इन्द्रियगण की विरक्ति को ही
'प्रत्याहार' बरवाना (ऋषि) ने, है पंचम योगांग यही ।।
तन के देश–विशेषमध्य, वा किसी बाह्य आलम्बन में –
चित्त लगा देने को है 'धारणा' कहा (इस दर्शन में)
यह योगांग छठा है जो संयम–त्रय में से प्रथम, अहो ।
घुसते नही क्षेत्र में इसके, दैहिक या मानसिक विकार।। 20।।

उपर्युक्त आलम्बन में ही ध्येय वस्तु का उत्तम ज्ञान–
जब निश्चितरूपेण प्रवाहित हो (जैसे हो आदत या बान)
पूर्ण धारणा होने पर ही ध्यान उदय हुआ करता है,
यह सप्तम सोपान योग का योगी तभी चढ़ा करता है ।
किंवा, चित्तवृत्तियाँ ध्येयाकार बनें, तब ध्यानोदय–
होना माना जाता है (ऋषिवर्य्य वतंजलि के अनुसार) ।।21।।

उसी ध्येय में वृत्ति, पूर्णतः निरूद्ध जब हो जाती है ।
'समाधि' का शुभ नाम, वही सर्वोच्च दशा, तब पाती है ।।
'ध्यान' समाधि गिने जाते है दूजे, तीजे, अनुक्रम पर ।
संयम–त्रय में, पहला जिसमें रहे 'धारणा' का स्तर ।।
कही 'असम्प्रज्ञत' प्रथम, दूजी समाधि है ' सम्प्रज्ञत'–

(इन दोनो ही समाधियों से योगी सभी बने अविकार) ।।22।।

'संप्रज्ञात' पूर्व में, फिर हो प्राप्त, 'असंप्रज्ञात' (अहा)
जिससे आत्यंतिक निरोध, सब चित्तवृत्ति का, सत्य कहा ।।
केवल नही वृत्तियाँ, प्रत्युत उनके सँग संस्कार सभी–
पा जाते हैं (भुनेचने सम) क्षय, (उगते है फिर न कभी) ।।

तब आत्मा, चैतन्य, शुद्ध निजरूपमें प्रतिष्ठित होता ।
यह कैवल्य कही जाती उपलब्धि (जो हरे भवभय भार) ।।23।।

हो साधना सुदृढ्तापूर्व तथा अथक हो अध्यवसाय ।
मनुज तभी यह दशा पावनी, सुखदा, शुभा असंशय पाय ।
सिद्धि–लाभ योगी नारी नर, विविध भाँतिका, है करते ।

(पर, उनमें से मुख्य आठ ही प्रकार हम सम्मुख धरते)
'अणिमा' 'लधिमा' महिमा एवं प्राप्ति और प्राकाम्य कहें ।
शेष तीन का नाम गिनावें हम आगे, सब अष्ट प्रकार ।।24।।

है 'वाशित्व' ईशित्व 'यथाकामावसायिता' ही तीनो ।
जिन्हें जोड़ने पर गिनती में सुसिद्धि पूरी हो आठों ।।
यद्यपि है साधनामार्ग में सिद्धिप्राप्ति स्वाभाविक ही ।
तथापि इनमें योगी को फँसना चाहिये न कही कभी ।
जो समर्थ साधक होते, वे उदासीन इनसे होकर –
सदा साधना–लीनं रहे प्रभुवर भी उनसे करते प्यार ।।25।।

मिलते फल,विश्वासों के अनुरूप यती नारी नर को ।
पर, न किसी भी सु–सिद्धि का नीचा या भौंड़ा संस्तर हो ।।
जो चेतन को रखें 'ओउ्म प्रेमी' जीवन करते पावन –
उनको सत्वर योग, सिद्ध होता है (मंगलमय, शोभन)
देता है पातंजल–दर्शन हमें योग का शुचितर बोध ।
कोई भी नारी, नर बनले सुसिद्ध, उसपर कर व्यवहार ।।26।।

(ओ.प्रे.)

ओ३म्

"पद्यमय पातंजल प्रवचन"

(पातंजल योगदर्शन की हिन्दी पद्य-परिणति)

प्रथम पाद (समाधि-पाद)

1- "अथ योगानुशासनम्" ।

"सूत्र पहले में कहा-'योगानुशासनम् अब सुनो'।
"ग्रन्थ का आरम्भ करते है सु-धी ! इसको गुनो"।।

2- "योगनिश्त्तवृत्तिनिरोधः" ।

(चित्तवृत्ति-निरोध जब स-विधि पूर्ण प्रयोग हो ।
(शास्त्र भाषा में) सफल तब ही सु-पावन 'योग' हो।।

3- "तदा दृष्टुःस्वरूपे अवस्थानम्" ।

"वृत्तियां जब चित्तकी होती निरूद्ध, सुरीति से ।
बस, अभय तब ही बने साधक, सफल भव-भीति से।।
हो अवस्थिति उससमय निजरूप में, संसिद्ध की ।
वासनाएं नित्व रह ले ज्ञान-शर से विद्ध ही" ।।
दिव्यदृष्टा को अमित आनन्द आत्मिक मिल सके ।
भव्यता की राशि पाकर चिति-सु कलिका खिल सके।।

4- "वृत्तिसारूप्यमितरमत्र" ।

(जो निरोध से भिन्न अवस्था है, वह तो व्युत्थान कहावे।
उसमें दृष्टा की स-रूपता सभी वृत्तियों से हो जावे ।।
यों प्रतीत होता है मानो दोनो का सारूप्य हो गया है
दृष्टा और वृत्तियों का भिन्नत्व न जाने कहाँ खो गया ।।

यही वृत्ति सारूप्य अवस्था जग में बहुत दिखती रहती।
उस कारण ही चितिबेचारी क्लेशपाश में बँधती रहती ।।

5- 'वृत्तयः पन्चतप्यः क्लिष्टा ऽक्लिष्टाः ।'
रागद्वेष इत्यादि क्लेश की हेतु वृत्तियां क्लिष्ट कहावें ।
इन क्लेशों को नष्ट करे जो, वे अक्लिष्ट नामिका सुहावें ।।

पांच प्रकार, वृत्तियों के है क्लिष्टाऽक्लिष्ट भेद भी समझो
अपनाओ पांचो अक्लिष्ट ही पांच क्लिष्ट में कभी न उलझों '')

6- ''प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृतयः'' ।

पांच वृत्तियों में से पहली है प्रमाण (उसको तुम जानो) ।
है दूसरी विपर्यय नामक, (हे साधक उसको पहचानो)
है विकल्प तीसरी वृत्ति जो, उसका भी मत करो विस्मरण।
चौथी 'निद्रा' और पांचवी 'स्मृति' है (लखलो सब के लक्षण)।।

7- ''प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि'' ।
प्रमाण वृत्ति के प्रकार तीन है कहे गये ।
(अनेक भेद हो परन्तु ये प्रमुख गहे गये)।।

प्रत्यक्ष पहला है तथा अनुमान है दूजा, सखे ।
आगम' तृतीया (सु) भेद है (प्रत्येक निज गुरूता रखे)

8- ''विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूप प्रतिष्ठम् ।''
(विपर्ययवृत्ति को विद्धान मिथ्याज्ञन कहते है ।)
सदा ही योग सूंत्रो से किये पहचान रहते है ।।
प्रतिष्ठित जोन वर्णित वस्तु के हो रूप में बिल्कुल
उसे ही तो विपर्यय नाम से धीमान गहले है ।)

9- ''शब्दज्ञनानुपाती वस्तु शून्यों विकल्पः
सुनो विकल्पवृत्ति का लक्षण, उसपर पूरा ध्यान धरो ।
जो कुछ कहा पतंजलि ने साधक वर ! उसका मान करो''।।
शब्दो से उत्पन्न ज्ञान का जो अनुपाती रहता है ।
यों पीछे चलना, स्वभाव जिसका (योगी ऋषि कहता है) ।।
वस्तु-शून्यता रखे मुख्यता से निज में जो सदा, सखे ।
बस उसको ही तो विकल्प कहकर साधक पहचान रखे ।

10- ''अभाव प्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ।''
जो अभाव की ही प्रतीति को आश्रय करने वाली रहती ।
पूज्य पतंजली मुनि की प्रतिभा, उसी वृत्ति को निद्रा कहती।।
जाग्रत औं स्वप्नावस्था की सभी वृत्तियां जिसमें लय हों।
वह अभावप्रत्ययालम्बना वृत्ति, बना दे नही अभय क्यों ?

11- "अनुभूतविषयासंप्रमोषः स्मृतिः" ।

अनुभूत विषय ही पुनः चित्त में ज़ब जाना जाता है ।
तब ('दर्शन' की भाषा में) 'स्मृति' नाम वही पाता है ।।
आरोहणपूर्वक 'स्मृति' भी तन्मात्रविषयिणी होती ।
पूर्वानुभूत से अधिक नहीं किंचित् विस्तीर्णा होती ।।

12- "अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः" ।

(अभ्यास औ वैराग्य से उन वृत्तियां का हो निरोध ।)
(आप्तजन मे है नही इस तथ्य पर कुछ भी विरोध ।।)
(जो है पतजंल ने कहा निज यौगदर्शन में यहाँ –)
वह योगिवर श्रीकृष्ण, गीता में कहें, अन्तर कहाँ ।।

13- "तत्र स्थितौ यत्नेऽभ्यासः" ।

चित्त–(सं) स्थिति के विषय मे यत्न ही 'अभ्यास' है ।
साधकों द्वारा स–विधि होता यही सु–प्रयास है ।।

14- "स तु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारा से वितोदृढभूमिः ।
दीर्घकाल तक जो होता 'अभ्यास' निरन्तर, साधक द्वारा।
वह व्यवधान रहित रहकर ही बन पाता है, सुखकर "प्यारा"।।
अनुष्ठान जिसका श्रद्धा से तथा भक्तिपूर्वक हो पावे ।
केवल वह अभ्यास वीर्यवत्तर होकर, सबमल धोपावे ।।
(विधिवत् जीवन यापन करके जो अभ्यासी बढ़ता रहले ।)
सुदृढ़भूमि वाला उसका 'अभ्यास' प्रगति–गिरि चढ़ता रहले ।।

15- "दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्"
(दो प्रकार का होता है 'वैराग्य', 'अपर', 'पर' नामो वाला ।)
(रह अभ्यासी का संगी, यह उसे करे सुखधामो वाला।।)
'वशीकार' भी कहलाता है वही अपर वैराग्य शुभंकर ।
जिसके द्वारा विषय–वितृष्णा पा सकता है साधक बढ्कर ।।
आनुश्रविक संदृष्ट सभी विषयों में तृष्णा रहे नहीं जब ।

16- "तत्परं पुरूष ख्यातेर्गुण वैतृष्ण्यम्"।
(जबकि विवेकख्याति के द्वारा गुण–वैतृष्ण्य प्राप्त हो जावे ।)
(वह तृष्णा– राहित्य भाव) तब सच्चा 'पर' वैराग्य कहावे ।।

17- ''वितर्क विचारा ऽनन्दा ऽस्मिता ऽनुगमात् संप्रज्ञातः ।
(चित्तवृत्तियों का निरोध होता वितर्क से सुसम्बद्ध जब) ।
तव समाधि वह 'वितर्कानुगत' (योग–प्रबुद्ध कहै ऐसा सब) ।।
वह समाधि है 'विचारानुगत' होवे जो विचार के द्वारा ।
जो आनन्द जन्य हो, उसके आनन्दानुगता निर्धारा ।।
वह 'अस्मितानुगता' कहलावे जिसे अस्मिता से संबंध ।
'संप्रज्ञात समाधि' नाम से वर्णित, चारो का बन्ध ।।

18- ''विराम प्रत्ययाभ्यास पूर्वः संस्कार शेषो अन्यः ।''
(सर्ववृत्तियो के निरोध का है कारण जो 'पर' वैराग्य)
उसक अनुष्ठान से बढ़कर साधक पावे क्या सौभाग्य ?
पुनः पुनः उस अनुष्ठान का जब अभ्यासी बनता है–
तब साधक में (सु) संस्कार इसका ही बाकी बचता है ।।
योग–शास्त्र कर्ता अनुभव से कहते इसे असम्प्रज्ञात ।
(अहा उन्हें तो इस समाधि की महिमा रही पूर्णतः ज्ञात)

19- ''भवप्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम'' ।
वह (सु) सिद्धि मिलती विदेह को जिसका भवप्रत्यय है नाम।
प्रकृतिलयों को भी इसकी ही प्राप्ति हुआ करती अभिराम ।।
भवप्रत्यय समाधि को योगी माने सदा असम्प्रज्ञात ।
उपर्युक्त दोनो प्रकार के सिद्ध, रहे इसमें निष्णात ।।
जो 'विदेह' बनसक नही अथवा न प्रकृतिलय हो पाए ।
कहो उन्हें कैसे इतनीशुचि उत्तम (सं) स्थिति मिल जाए ।।

20- ''श्रद्धावीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्'' ।
(नहीं लभ्य जिनको 'भवप्रत्यय', उनकी इतरो में गणना) ।
है 'उपायप्रत्यय समाधि के अधिकारी वे महामना ।।
यह भी पातञ्जल दर्शन में मानी गई असम्प्रज्ञात।
(इसकी प्राप्ति, शक्य है जिनसे वे विधि थी ऋषि को परिज्ञात)।।
श्रद्धा वीर्य तथा स्मृति एवं 'समाधि' 'प्रज्ञा' ये सदुपाय।
(इनके द्वारा उन इतरो में श्रेयस्कर आनन्द समाय) ।।
वे न 'विदेह' बन सके चाहे, नही प्रकृतिलय पद पाया ।
फिर भी इस उपाय प्रत्यय से दित्य उन्नयन अपनाया ।।

21- "तीव्र संवेगानामासन्नः" ।
(होवे समाधि-लाभ उसे शीघ्रतम (सदा)।
जो तीव्र वेगमय रखे उपाय-सम्पदा ।।
(उसको समाधि-सौख्य न आसन्न क्यो रहे)।
अधिमात्र सु-संवेग से सम्पन्न जो रहे ।।

22- "मृदुमध्याधिमात्रत्वान्ततोअपि विशेषः ।
(तीव्र संवेग के भेद जो तीन है)
नाम उनके (पतंजलि महामुनि) कहें ।
(साथ ही, वे बतावे इसी सूत्र में)
कौन कितने विशेषत्व-संयुत रहें ।।
भेद-मृदु, मध्य, अधिमात्र-तीनो सदा-
तीव्र संवेग के संग (क्रमशः) बढ़ें ।
दूसरे में प्रथम से अधिक लाभ है ।
तीसरे में समुन्नति-शिखर पर चढ़े ।।
योगियों की बने तीन ही श्रेणियाँ
एक से दूसरी में क्रमिक भव्यता ।
सिद्धि, अधिमात्र से प्राप्त हो जो सके -
वह रखे सर्वदा सर्वथा दिव्यता ।।

23- "ईश्वर प्रणिधानाद्वा" ।
शीघ्रतम समाधि-लाभ का उपाय एक और
योगसूत्रकार ने विकल्प से बता दिया ।
लेके संक्षिप्त नाम ईश्वर प्रणिधान अहा ।
इसतनी सी उक्ति से महत्व का पता दिया ।।
प्रभु को प्रकृष्टतया रख लो निधान सदा,
तब तो समाधि, भला क्यो न लग पाएगी ?
(जीवन सु-बीज गिरे ईशभक्ति धरती पर)
पुण्य सस्य कैसे फिर नही उग आएगी ।।

24- "क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरूष विशेष-ईश्वरः ।
ईश्वर है विशेषता वाला
पातंजल-दर्शन में वर्णित, आहा पुरूष विशेष निराला ।।
ईश्वर है विशेषता वाला।। टेक ।।
क्लेशो, कर्मो कर्मफलों से तथा वासनाओ से विरहित ।
सभी अन्य पुरूषों से है उत्कृष्ट,
सदा वैशिष्ट्य के सहित ।।
वह विभिन्न, चेतन, पावन प्रभु-
अपनी अद्भुत संत्तावाला ।।
अपरामृष्ट विपाक से रहे,
असम्बद्ध आशय से रहता ।
अन्तर्यामी होकर भी जो,
फल भोगो को तनिक न गहता ।।
(इसी विलक्षण अनुपम विभु ने आप्तो को विस्मय में डाला) ।।
ईश्वर है विशेषता वाला ।।

25- "तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्"
जिस वैशिष्ट्यवान ईश्वर को
योगसूत्र ने पहले गाया ।
उसमें ही सर्वज्ञबीज भी-
यहां निरतिशय है बतलाया ।।
अतिशयता या बढती से, वह
रहित रखे सर्वज्ञता सदा ।
बीजरूप में भी सु-पूर्ण ही-
रहे ईश की ज्ञान- सम्पंदा ।।

26- " स पूर्वेषामपि गुरूः कालेनानवच्छेदात्" ।
गुरूओं के गुरू परमेश्वर का
कहॉ काल से अवच्छेद हो ।
उसकी गुरूता के सु-ग्रन्थ का
कैसे कोई परिच्छेद हो ।।

पहले के (ब्रह्मादिक) जितने थे गौरवशाली गुरू नामी ।
उन सबका भी वही ओ३म् है आदि परमगुरू अन्तर्यामी ।।
समय कहाँ, किस भाँति कर सके
उसको परिच्छिन्न या परिमित
जो अनादि, अज, दिव्य, एकरस,
कब गुरूत्व हो उसका सीमित) ।।

27- "तस्य वाचकः प्रणवः" ।
(उस ईश्वर का बोधक है, बस–
ओ३म् शब्द (जौ प्रणव कहावे) ।
इस वाचक द्वारा ही प्रभु वर वाच्य रूप में गाया जावें।।
'तस्यवाचक प्रणव कहकर यही पतंजली योगी बोले
ज्यो सागर सा गागर में भर, मर्म परम संस्तुति के खोले ।।)

28- " तज्जपस्तदर्थ भावनम्" ।
'ओ३म्' नाम का जप करलो, बस, यह ईश्वर प्रणिधान है ।
उसी प्रणव की अर्थभावना, इसका अंग प्रधान है
(चिन्तन पुनः पुनः जब होवे इस प्रकार परमेश का–
सत्साधनाशील साधक यों बनले जब सर्वेश का–
तब उपासना बने सार्थिका, प्रभु में लगता ध्यान है ।
जप ही सिद्धि–प्राप्ति की दिशि में बढने की पहचान है) ।।

29- "ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोप्यन्तराया भावश्च"।
(सुनीं पतंजलि मुनि की बाते अब तक जैसे ध्यान से ।
वैसे ही सुनलो, क्या होता है ईश्वर प्रणिधाम से ।
हाँ वह प्रणव अर्थयुत जपना बड़े लाभ का कार्य है ।
योगमार्ग के विघ्नो का हटना, उससे अनिवार्य है।।)
हो प्रत्यक् चेतना ज्ञन भी साधक को उसके द्वारा ।
(आत्मा का साक्षात्कार भी अन्य नाम इसका न्यारा ।।)
आत्मबोध–संप्राप्ति एक ही क्या छोटी उपलब्धि है ।
यही नही, पर सार्थक जप से दूजी भी तो लभ्य है ।।
सर्वअन्तरायों का होता है अभाव, बाधा हटती ।
(निष्कण्टक बनता योगी का पथ, कुविधा–दुविधा मिटती ।।)

30- "व्याधिस्त्यान संशय प्रमादालस्याविरति भ्रान्ति
दर्शनालब्ध भूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्त विक्षेपास्तेऽन्तरायाः" ।।
(विगत सूत्र, जिनके अभांव की बात कह चुका है पावन ।
उन्हीं अन्तरायों का है अब यहाँ नाम से दिग्दर्शन) ।।
'व्याधि' 'स्त्यान' प्रथम औ दूजे संशय ही तीसरी गिना ।
चौथा है 'प्रमाद' पंचम आलस्य छटी अविरति (कठिना) ।।
सप्तम विघ्न भ्रान्ति-दर्शन है साधक ! यह भी मत भूलो ।
अष्टम् 'अलब्धभूमिकत्व' है (जिसे हटा, गौरव छू लो)
है अनवस्थितत्व ही अन्तिम, ये नौ विक्षेप बड़े ।
(योगसाधनाशील चित्त के सम्मुख रहले नित्य अडे) ।।
(इनका जो कर सके निवारण वह संसिद्धि सदा पाता ।
इन्ही अन्तरायों से बचक नर योगेश्वर बन जाता) ।।

(विक्षेपो का विवेचन) (स्वतन्त्रतापूर्वक)

कायिक और मानसिक सब ही रोग, 'व्याधि' कहलाते है ।
(न हों निवारित जब तक, साधक को तब तक दहलाते है")
जो आराम तलब होना है, नाम उसी का धरा-'स्त्यान' ।
कामों से जी चुराना, यह भी इसकी ही पहचान"
'संशय' वा सन्देह वही, जिसमें निश्चय का रहे अभाव ।
(असमंजस : वाली यह संस्थिति डाले अपना बुरा प्रभाव ।।)
सुस्ती-सनी उपेक्षा की संज्ञा 'प्रमाद' है, (यों जानो ।
दीर्घसूत्रिता का ही सबसे बड़ा, इसे भ्राता मानो ।।)
जिसे काहिली कहलें जगजन, सूत्र उसे 'आलस्यं' कहे ।
(इसके वश में पड़कर मानव किसी काम का नही रहे ।।)
विरति हो नहीं जब विषयों से, तब ही तुम 'अविरति' समझो ।
(अनासक्तियुत रखलो जीवन, कभी न भोगो में उलझो ।।)
सच्चे जैसा लखना भ्रम को यही 'भ्रान्तिदर्शन' होता ।
(इसमें फंसकर साधक देता विकट संकटो को न्यौता।।)
(कुछ कुछ) 'अलब्ध भूमिकत्व' को इस प्रकार कह सकते है-
'योगी, जिससे , असफलता पर धीर नही रह सकते है' ।।
वह 'अनवस्थितत्व' है , जो चंचलता, सिद्धिकाल में हो ।
(नवों अन्तरायो की व्याख्या अनुभव-अन्तराल में हो")

31- ''दुःख दौर्मनस्यांगमे जयत्वश्वास प्रश्वासाः विक्षेप सहभुवः ।''
(पहले नौ विक्षेप गिनाये अब उनके सहकारी पॉच –
यहॉ कहे जाते है) (जिनको लिखा पतंजलि ने कर जांच ।।)
है पहला तो 'दुःख', दूसरा 'दौर्मनस्य' माना जाता ।
अंगों में कम्पन का होना है तीसरा कहा जाता ।।
चौथा, 'श्वास', पॉचवॉ है 'प्रश्वास' (कि सूत्र सही कहता।
ग्रस्त रहे जो इन पॉचो से वहतो अवनति ही गहता ।।)

32- ''तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्वाभ्यासः'' ।
(योग के विक्षेप, उपविक्षेप जितने भी कहे –
उन सभी को दूर करने के लिए 'अभ्यास' हो ।
तत्व केवल एक ही रहले विषय उसका सदा,
बस, तभी प्रतिषेध का सार्थक सफल सु–प्रयास हो''
('प्रणव' ही वह तत्व है, ऐसा बताते सिद्धजन,
ऋषि पतंजलि भी यही निज सूत्रगण मे कह गये ।
मार्ग को सु–प्रशस्त करने में पड़ी आपत्ति जो,
आप्त योगी हर्षपूर्वक, यज्ञयुत रह, सह गये'')

33- ''मैत्री करूणा मुदितोपेक्षाणां सुख दुःख पुण्यापुण्यविषया–
णां भावनातश्चित्त प्रसादनम्'' ।

(सुखियों से मित्रता, दुःख ग्रस्तो के प्रति करूणा करते ।
पुण्यात्मा जन पर मुदिता की हर्षभावना उर धरते ।।
सदा पापियों के प्रति उनके भाव उपेक्षायुत रहते ।
यही साधको की उत्तम पहचान, पतंजलि ऋषि कहते ।।
इन भावो के अनुष्ठान से चित्त प्रसन्न हुआ करता ।

निर्मलता भी अनायास मिलती है (मधु से मन भरता) ।।

34- ''प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य'' ।

(मैत्रीकरूणा मुदितोपेक्षा मिलकर बनता है प्रथम प्रकार ।
जिसका पिछ्ले सूत्र में हुआ क्रमशः वर्णन, सह–विस्तार) ।।
(चित्त प्रसादन हेतु दूसरी) वैकल्पिक विधि अब सुन लो ।

(मन की संस्थिति- संपादन में इसका भी महत्व गुनलो) ।।
जबकि प्राण का प्रच्छर्दन (याबहिः निस्सरण) करता हो ।
और विधारित विशेष यत्नों से रोके रखता हो ।।
तब भी प्राणायाम-परायण वह साधक (सु) सिद्धि पाता ।
उभय क्रियाओं से जुड़ जाता उसका (योग-ऋद्धि) नाता ।।
उदर-सांस्थिता वायु, नासिका-पुट के द्वारा जो धारे-
आर्ष रीति से बाहर भी फेंके, वह पावे सुख सारे।।

35- "विषयवती वा प्रवृत्तिरूत्पन्ना मनसः स्थिति निबंधनी" ।
(उपर्युक्त दो के आगे सुनलो तीसरा विकल्प, सुजान ।
पातंजलदर्शन मं जिसका सूत्ररूप से किया विधान ।।)
(शब्द, गंध, रस रूप और संस्पर्श) विषयावाली जो हो-
वह प्रवृत्ति उत्पन्न हुई मन की संस्थिति-निबंधनी हो
(इस प्रकार भी योग्य मार्ग दर्शन में जो साधक चलता-
उसे मनोनिग्रह का शुभफल पावन आह्लादक मिलता) ।।

36- "विशोका वा ज्योतिष्मती"
(यह चौथा विकल्प है, मन इसके द्वारा भी बँध जाता ।
(यदि विधिवत साधना करे तो साधक तनिक न रूँधपाता) ।।
शोक विरहिता जो प्रवृत्ति होती है 'ज्योतिष्मती' प्रवीण ।
वह उत्पन्न हुई मन को बाँधे, (बतलावे धर्म-धुरीण)।।

37- "वीतराग विषयं वा चित्तम" ।
वीतराग (या रागरहित) योगीजन विषयक संयम हो-
(जिन साधकगण के चित्रों का यह आलम्बन अनुपम हो)।।
उनके मन की (सं) स्थिति को भी बाँध सके यह विधि पावन ।
इस पंचम विकल्प से भी हो शुभ निरोध का संपादन।।

38- "स्वप्न निद्राज्ञानालम्बनं वा" ।
(जो स्वप्न और निद्रा कें ज्ञानों को आश्रय करने वाला-
वह (सु) चित्त भी बन सकता है मन संस्थित रखने वाला ।।
छठा विकल्प इसे ही कहकर किया पतंजलि न शुचि गान ।
(इस प्रकार भी बतलाया है सिद्धि- प्राप्ति का विरल विधान) ।।

39- "यथाभिमत ध्यानाद्वा" ।
(अन्तिम जो सप्तम विकल्प है, अब यह सुनलो, प्रिय विद्वान्
'यथाभिमत ध्यानाद्वा' कहकर जतलाते ऋषि, तथ्य महान्) ।।
जो हो जिसे दृष्ट या अभिमत, उसका ही करने से ध्यान ।
बँध जाती है मन की (सं) स्थिति (गूढ़ तत्व यह लखो सुजान)
(अभिमत भी शास्त्रीय सु-मर्यादा के ही रहे सदा अनुकूल)
है अनिवार्य कि सतत प्रगति-मति पहिने शुभ दिव्यता-दुकूल ।

40- " परमाणु परममहत्वान्तो अस्य वशीकारः" ।
जब वैकल्पिक पूर्वोक्त उपायो से शुचिसंस्थित चित्त बने-
तब होता उसका वशीकार (जीवन में योगज पर्व मने)
परमाणु-तत्व पर्यन्त् बढ़े सूक्ष्मत्व बोधकी परिसीमा ।
(सब ही महान वस्तुओं बीच विजिता-सी हो जाती 'भूमा')
अणु और महान चरमता की संप्राप्ति, सु-साधक में करते ।
(सारे विकार उसके समीप आने तक में भी हैं डरते) ।।

41- " क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृ ग्रहण ग्राह्येषु-
तत्स्थ तदंजनता समापत्तिः" ।
(सब राजस तामस वृत्ति रहित जो स्वच्छ चित्त हो जाता है ।
वह अतिनिर्मल अभिजात भव्य मणि की ही उपमा पाता है ।।
जब ऐसा उत्तम चित्त, होसके संस्थित, फिर तन्मय भी हो ।
अस्मिता, इन्द्रियाँ और ग्राहय सब विषयों में अन्वित ही हो ।।
तब 'समापत्ति' कहलाती है) (तद्रूप अवस्था उसे कहो।
साधकवर कर पूरे प्रयत्न उस दशा में निरत सतत रहो ।।
इन्द्रियाँ बताई 'ग्रहण' यहाँ अस्मिता ग्रहीता कही गई ।
जो सूक्ष्मासूक्ष्म विषय है वे सब ग्राह्य कि भाषा नई)

42- "ततः शब्दार्थज्ञान विकल्पैः संकीर्णा सवितर्कासमापत्तिः ।
(समापत्ति के चार है शुभ शास्त्रीय प्रकार ।
योगसूत्र द्वारा हुआ जिनपर विमल विचार) ।।
जिनके द्वारा प्राप्त हो अनुपम सुख अभिराम ।
(चारो में से) वह प्रथम 'स-वितर्का' शुभनाम ।।

शब्द अर्थ 'औ' ज्ञान के जो विकल्प या भेद-
मिली हुई उनस रहे यह समाधि (गत-खेद) ।।
(अथवा, तीनो भिन्न जो शब्द, अर्थ 'औ' ज्ञान ।
हों अभेदरूपी जहाँ इन पदार्थ का भान ।।
समापत्ति वह भव्य है 'स- वितर्का' विख्यात)
(कहें पतंजलि महामुनि राजयोग निष्णात) ।।

43- "स्मृति परिशुद्धौ स्वरूप शून्येवार्थ मात्र निर्भासा निर्वितर्का" ।
(दूजी 'समापत्ति' कहलाती है दिव्य निर्वितर्का सु-पुनीत) ।
संस्मृति की परिशुद्धि हो चुके तब यह आती, (गाती गीत) ।।
ग्रहणाकार तथा ज्ञानात्मक स्वरूप से शून्य-सी बने ।
उसी चित्त की श्रेय वृत्तिका साधक में शुचि साज ठने ।।
(आगमानुमानो के जो हैं कारणभूत, शब्द संकेत ।
उनकी संस्मृति से निवृत्ति पा योगी सुख में रहे सचेत) ।।

44- "एतयैव स- विचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता" ।
पहली दूजी समापत्तियाँ सूक्ष्मविषय में जब जाती-
वे ही तब तीसरी तथा चौथी भी (क्रमशः) कहलाती ।।
तीजी का स-विचाराः चौथी का शुभ नाम निर्विचारा ।
(केवल एक सूत्र में, इंगितकर, यह ऋषि ने उच्चारा)
इनको ही व्याख्यात समझो (क्योंकि दशा वे अनुभवगम्य
क्यो न पतंजलि महर्षिवर को माने साधक नित्य प्रणम्य)

45- "सूक्ष्म विषयत्वं चालिंग पर्यवसानम्" ।
(पूर्वसूत्र मे सूक्ष्म-विषयता जो ऋषिवर ने बतलाई ।।
सीमा अब उसकी अलिंग पर्यन्त, जाँचकर जतलाई ।।
प्रकृति, अर्थ है 'अलिंग' का तो (जोकि पतंजलि को अभिप्रेत)
उनका आशय भलीभाँति समझे, सो बनले पुण्य-निकेत) ।।

46- "ता एव स-बीजः समाधिः" ।
(ये हैं स-बीज समाधि भी पूर्वोक्त (मिलकर) चार ही ।
(जिनका दिया विवरण, पतंजलि ने कि जो सुख-सार भी) ।।

47- "निर्विचार वैशारद्ये अध्यात्मप्रसादः" ।
(जब निर्विचार समाधि की होवे सुदक्ष प्रवीणता-
बस, तब सकलमल की निरन्तर हो सके परिक्षीणता ।।
अध्यात्म-प्रज्ञ की विमलता सहज विकसित होती थीं ।
इस विरल वैशारद्य से मिलते प्रसाद (परम) सभी) ।।

48- "ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा" ।
(शुचि प्रज्ञा वा बुद्धि उपजती तब मिलता अध्यात्मप्रसाद
'ऋतम्भरा' वह कहलाती है (उसी उच्चमति मे आहलाद) ।
(अविद्याादि रहित सु-मेधा, ऋतम्भरा की है पर्याय)
सत्यधारिणी, मोद कारिणी इसको योगशास्त्र बतलाय ।

49- "श्रुतानुमान प्रज्ञाभ्यामन्य विषया विशेषार्थत्वात्" ।
(श्रुत की एवं अनुमानो की प्रज्ञा से उसका विषय अलग ।
वह ऋतम्भरा उज्जलमति है जो सिद्धों में होती जग मग ।।
आगमानुमान कहाँ कैसे कब उसकी समता कर पावें ?
जब विशेषार्थ की बात चले तब ये कितना दम भर पावें ।।
उत्तम सदर्थ का शुचिविशिष्ट वह साक्षत्कार कराती है ।
साधनाशील जन के माध्यम से चमत्कार दिखलाती है) ।।

50- "तज्जः संस्कारो अन्य संस्कार प्रतिबंधी" ।
(उस ऋतम्भरा प्रज्ञा से जो संस्कार उपजता है पावन-
वह अन्य सर्व संस्कारो का बाधक होता है अति शोभन ।।
व्युत्थान जन्य संस्कारों पर लग पावे उससे रोक बड़ी ।
सचमुच सारी ही बाधाएँ, बनकर प्रतिबंधित, रहें पड़ी) ।।

51- "तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः" ।
(निर्बीज समाधि उसे कहते,जिसमें वह भी संस्कार हटे ।
जो ऋतम्भरा-प्रज्ञा-(सु) जन्य (उसका भी मानो बीज-मिटे")।
(लो सुनो कि) 'पर-वैराग्य' साधने से -
हो पावे दिव्य निरोध ।
सर्व पुरातन एवं नूतन संस्कारों का हो प्रतिरोध ।।

(इति समाधि पादः)(प्रथम पाद समाप्त हुआ)

द्वितीय पाद (साधन पाद)

52- ''तपः स्वाध्यायेश्वर प्राणिधानानि क्रियायोगः'' ।
(क्रिया योग है वही कि जिसमें उन तीनो का रहे समन्वय ।
'तप, ईश्वर प्रणिधान तथा स्वाध्याय' नाम जिनके सु–पुण्यमय) ।।

53- ''समाधि भावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च'' ।
(क्लेश (क्रमशः) क्षीण करने के लिये
(या तनू करणार्थ) यह उपयुक्त है ।
भावना, होवे समाधि (सु) सिद्धिकी,
हेतु यों दूजा, अहो, संयुक्त है ।।
इन उभय के अर्थ ही तो शास्त्र में
क्रियामय शुभयोग का विनियोग है ।
(साधकों ने अनवरत उद्योग से
जीवनों में भी किया सु–प्रयोग है) ।।

54- '' अविद्या अस्मिता राग द्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः'' ।
(बाधनारूपिणी पीड़ा जो उपजाते रहते असहनीय ।
वे पंचक्लेश ही यहाँ पतंजलि मुनि द्वारा है वर्णनीय ।
क्रमशः उनके है नाम 'अविद्या' और 'अस्मिता' राग, द्वेष
(इन चारो के आगे पंचम बतलाया ऋषि ने) 'अभिनिवेश' ।।
(ये पाँचो है वस्तुतः विपर्यय अथवा मिथ्याज्ञन कहे ।
पातंजलदर्शन से इनका संकेत सही, विद्वान गहे) ।।
सचमुच इन सबका है कारण, बस, प्रथम, अविद्या, ही केवल
जब ये रहते है तब करते संस्कारो के परिणाम प्रबल ।।
(गुण–परिणामों को दृढ करके ये रहे चित्त में वर्तमान ।
हो सके न जब तक तनूकरण तब तक नित होवे वर्द्धमान ।।)

55- ''अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्त तनु विच्छिन्नोदाराणाम'' ।
(वह क्षेत्र अविद्य नामक है जसमे अस्मिता आदि उगते ।
उन चारो क्लेशो के प्रभेद सस्यों में फल जैसे लगते ।।
'अस्मिता' 'राग' औ 'द्वेष' तथा अभिनिवेश के भी चार चार
भेदो के नाम– प्रस्तुत ओर तनु (सु) विच्छिन्न एवं उदार ।।
सोलहो पनपते उसी खेत में जिसे 'अविद्या' कहा गया ।
(जो सिद्ध बन सके उनसे ही शुभ तनूकरण पथ कहा गया) ।।

56- ''अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्य शुचि सुखात्म ख्यातिरविद्या'' ।
(यही अविद्या है कि दुःख में सुख का मान किया जावे ।
अशुचि वस्तु को शुचि (अथवा अतिपावन) भान लिया जावे ।।
हो अनित्य में नित्य भावना, तो भी रहे अविद्या ही ।
आत्मा कहे अनात्मा को जो, मिथ्या उसकी विद्या भी) ।।

57- ''दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवा अस्मिता'' ।
(अस्मिता क्लेश की परिभाषा है योगशास्त्र मे इस प्रकार ।
जिसको पढ्कर साधक जन में होवे सुबोध का सु–संचार ।।
जब दृष्टा औ दर्शन की हो शक्तियाँ एक जैसी भासित ।
बस, तब होता ''अस्मिता'' क्लेश (यों पातंजल में परिभाषित) ।

58- ''सुखानुशयी रागः'' ।

(सुखभोग के पीछे रहे जो चित्त में इच्छा उसी के भोग की ।
राग कहते है उसे व्यवस्था है–पतंजलि कृत सु–पावन योग की ।।

59- '' दुःखानुशयी द्वेषः'' ।
(घृणा की चित्त में जो वासना
दुःखानुभव के बाद रहती है–
वही है द्वेष नामक क्लेश
(यों सुस्पष्ट योगिक सूक्ति कहती है) ।।

60- "स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढ़ोऽभिनिवेशः" ।
'अभिनिवेश' नामक जो पंचम क्लेश कहा उसकी परिभाषा-
सुनलें सत्साधक सब (जिनको योगसिद्धि की- हो अभिलाषा")
परम-भीति से प्राणिमात्र में है स्वभावतः प्रवहमान-सी,
जोकि अज्ञ के तथा विज्ञ के लिये रहा करती समान ही,
यह जिसकी प्रसिद्धि है उसको कहा 'स्वरस वाही' जो सच है ।
पातंजल दर्शन की पैनी सूझबूझ-यह तो सचमुच है।

61- "ते प्रतिप्रसव हेयाः सूक्ष्माः" ।
(क्रियायोग से जबकि सूक्ष्म हो जाते हैं पूर्वोक्त क्लेश सब ।
दग्धबीज-सम उन्हें बनाती प्रसंख्यान की पुण्य वह्नि जब ।।
केवल तब ही सर्वक्लेश की होती है निवृत्ति, हे साधक !
चित्त स्व-कारण में विलीन हो-बनता चिति का दिव्य सहायक) ।।

62- "ध्यानहेयास्तद् वृत्तयः" ।
(क्लेश की (सु-स्थूल) वृत्ति जब क्रिया योग से तनु होती हैं ।
तभी ध्यान से हेय बनी वे हानिशीलता सब खोती हैं ।।
उसी ध्यान को प्रसंख्यान भी कहें कि साधक जिसके द्वारा-
छोड़ त्याज्य को, योगासिद्धि का लक्ष्य प्राप्त करते हैं प्यारा ।।
क्लेश वृत्तियाँ तब तक रह लें सदा ध्यान हेया (सुत्याज्य) ही-
जब तक होकर सूक्ष्म, वे नहीं बन पाती हैं दग्धबीज-सी)

63- ("क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्ट जन्म वेदनीयः") ।
क्लेश जिनका मूल है उन कर्म की जो वासना।
बस, वही तो भोगने के योग्य है (यो मानना) ।।
(योगदर्शन में बताया ऋषि पतंजलि ने सही ।
सूत्र के द्वारा सचाई, स्वानुभव प्रेरित, कही) ।।
दृष्ट (या इस जन्म ही में) भोग्य जो केवल न हो-
वरन् (दूर) अदृष्ट में भी कह सके 'लो, यह सहो"।

64- "सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः" ।
अविद्या इत्यादि क्लेशों का रखे जो मूल,
उसका नाम 'कर्माशय' (विटप) है, (सुनो साधक) ।।

जाति, वय औ भोग के फल से लदा रहता–
अधिकतर ही (कि जोहै मुक्ति बाधक) ।।
(झाड़ जड से उखड़ता जबतक नहीं, तबतक लगेंगे ।
समय पर फल भी–नियम यह तो सनातन ।
क्यो उन्यूलन करो तरू का, सविधि तुम–
श्रेयमय जीवन बना लो दिव्य, पावन) ।।

65– "ते ह्लाद परिताप फलाः पुण्यापुण्य हेतुत्वात्ः" ।
(जाति, आयु औ" भौग है जो कमशिय–जन्य ।
ह्लाद और परितापमय फलदें (धन्याधन्य) ।।
इनके भी कारण सुनो जोकि पुण्य अरू पाप ।
(क्लेशों के ही नाश से मिटते है "त्रय ताप ।।)"

66– 'परिणाम ताप संस्कार दुःखैर्गुणवृत्ति विरोधाच्च दुःखमेव सर्वम् विवेकिनः।'
(आह्लादों का भोगकाल भी नित्यग्रस्त, परिणाम दुःख से ।
ताप और संस्कार दुःख का साथ साथ ही आक्रमण रहे ।।
इसके संग, सदैव गुणो की वृत्तिमात्र में भी विरोध है ।
विषय, जन्य सुख में तब ही तो विवेकियों को दुःख बोध हो।।

67– "हेयम् दुःखमनागतम् ।"
जो अनागत दुःख है, वह त्यागने के योग्य है ।
(यदि न हो अवरोध, तब तो विवशता से भोग्य है ।।),

68– "दृष्ट दृश्ययोः संयोगो हेयहेतु : ।"
हेयहेतु अथवा दुःखो का जो कारण बतलाया है ।
दृश्य और दृष्टा का ही संयोग उसे जतलाया है ।।
(यह पातंजल दर्शन में है इंगित पावन, सुखदायक।
जिससे प्रेरित होकर उन्नत हो सकता है सत्साधक"),

69– "प्रकाशक्रिया स्थिति शीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगाप वर्गार्थम् दृश्यम् ।।"
'दृश्य' किसे कहते हैं, इस पर योगसूत्र का सुनो विचार ।
स्वानुभूति से यह परिभाषा, अहा, की गई भले प्रकार ।।
दिया पतंजलि ऋषि ने हमको निश्चित और व्यवस्थित ज्ञान ।

जिसके द्वारा सही रूप में होती दृश्यों की पहचान ।।)
हैं प्रकाश औ क्रिया तथा संस्थिति ही जिसके विदित स्वभाव ।
भूत और इन्द्रिय से जिसके स्वरूप का होता सद्भाव ।।
भोग और अपवर्ग, प्रयोजन जिसके है, बस, 'दृश्य' वही ।
(कितनी उत्तम, तथ्यपूर्ण पहचान, संस्मरण योग्य कही ।।,

70- "विशेषाविशेष लिंग मात्रालिंगानि गुणपर्वाणि ।"
चार अवस्थाएं अथवा परिणाम, गुणों के, बतलाये ।
(क्रम से उनके नाम, सु-पावन, योगसूत्र में गिनवाये ।।)
पहला है 'विशेष', दूजे की संज्ञा धरदी है 'अविशेष' ।
तीजा 'लिंगमात्र' कहलावे, चौथे का 'अलिंग' ही वेष ।।,

71- "दृष्टादृशिमात्रः शुद्धो ऽपि प्रत्ययानुपश्यः ।"
दृष्टा यद्यपि निर्विकार है, दर्शन शक्ति मात्र ही ये ।
तथापि चित्तवृत्तियों के अनुसार देखने वाला है ।।,

72- "तदर्थं एव दृश्यस्यात्मा ।"
उसी पुरूष के लिये दृश्य का यह सब रहता सदा स्वरूप ।
कह जिसको 'दृष्टा' या 'चिति' भी, योगी माने अतुल, अरूप ।।,

73- "कृतार्थ प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्य साधारणत्वात् ।"
प्रयोजन, सिद्ध जिसका हो गया उसके लिये तो-
नष्ट यद्यपि हो चुका यह दृश्य सारा ।
किन्तु फिर भी वस्तुतः वह नाश पाता ही नहीं,
(ऐसा महायोगी पतंजलि ने उचारा ।।)
क्योंकि साझे की इसे माना गया है वस्तु सचमुच,
अन्य जन के साथ 'साधारण' सदा ही
सब कृतार्थों को न उससे अर्थ हो चाहे भले ही,
जो कृतार्थ नहीं बने, अविनष्ट उनको तो रहेगी ।।,

74- "स्व-स्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धि हेतुः संयोगः"।
हेय हेतु जिसको बतलाया पिछले एकसूत्र के द्वारा ।
वह 'संयोग' यहां (त्यों) वर्णित (ज्यो पातंजल में निर्धारा")
जो स्वशक्ति औ' स्वामिशक्ति संज्ञक स्वरूप उपलब्ध कराता ।

जिसके ही कारण से दृष्टा, अखिल दृश्य से रखता नाता ।।
ज्यों ही साधक बने विवेकी त्यों ही भ्रम का लेश न रह ले ।
सर्वदृश्य पर स्वत्व परखकर स्वामीभाव सर्वतः गहले ।।
तब तो वह संयोग स्वयं ही परिवर्तित बनकर वियोग हो ।
(पर ऐसी उत्तम संस्थिति का श्रेय सदा हो 'राजयोग' को ।।),

75- "तस्य हेतुरविद्या ।"
जो संयोग, अ-दर्शनरूपी, वर्णित पीछे कर दिया-
उसका हेतु यहां, (करके संक्षिप्त) सामने धर दिया ।।
(कहा पतंजलि ने, कि-) 'अविद्या' केवल कारण एक ही ।
जिससे यह संयोग उपजता, (कहे उसे 'अविवेक' भी ।।),

76- "तदभावात् संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् ।"
जब क़ारणाभाव होता है तब हो जावे कार्याभाव ।
मिटे अविद्या तो फिर कैसे रहे उक्त संयोग प्रभाव ?
न हो अ-दर्शनरूपी जब संयोग तब उसे कहते 'हान' ।
वही अवस्था, चिति का है कैवल्य, जो गहे सिद्ध, सुजान ।।,

77- "विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ।"
हान' जो ऊपर बताया, वह मिले कैसे ? कहां ? कब ?
(क्यो न परमोदार मुनिवर योगसूत्रो में कहें सब ?
लो, पतंजलि ने सुवर्णित किया 'हानोपाय' भी है ।
अहा, दर्शनकार की यह दया, ईश-सहाय-सी है ।।
शुद्ध औ' विप्लवरहित हो 'प्र-संख्यान' सुध्यान पावन ।
तो 'विवेक-ख्याति' वह बनती, सुविधि इसकी सु-शोभन ।।
हाँ, उसी शुचिरीति से है शक्य, साधक ! 'हान' पाना ।
अन्य 'कुछ भी' जो करे, उसको न मिल पावे ठिकाना ।।,

78- "तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा ।"
जिसने हानोपाय कर लिया वह निर्मल योगी हो जावे,
सात भांति की, सबसे ऊंची दशा-युता (शुचि) प्रज्ञा पावे ।।,

79- "योगांगाऽनुष्ठानानदशुद्धि क्षये ज्ञानदीप्तिरा विवेक ख्यातेः ।"
अब वह सुनो रीति, जो करती सब अशुद्धि का पूरा नाश ।
वैसा होने पर क्रमक्रम से विकसित होता ज्ञान-प्रकाश ।।
प्रसंख्यान पर्य्यन्त पहुंती दीप्ति विवेकमयी अवरिाम ।
दिव्य दशा मिलती अनुपम जो संस्पृदृणीय, भव्य, अभिराम ।।
(इसके लिये यही आवश्यक है कि सतत योगी बन ले ।
सत्साधक सब योगांगों के अनुष्ठान में जीवन दे ।।),

80- "यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावंगानि।"
योगांग आठ जो माने है पातञ्जल दर्शन में स-विचार ।
यह नामोल्लेख उनका, सम्बद्ध सूत्र के ही अनुसार ।।
पहला 'यम', दूसरा 'नियम', तीजे का 'आसन' है- शुभनाम ।
चौथा 'प्राणायाम',पाँचवाँ 'प्रत्याहार' दिव्य सुखधाम।।
छटा 'धारणा' और सातवां ध्यान (कि जो दुर्गम सोपान ।)
नाम, आठवें का, 'समाधि' है (जिसको पावें सिद्धिनिंधान ।।),

81- "अहिंसा सत्याऽस्तेय ब्रम्हाचर्यापरिग्रहा यमाः ।"
पहला, जो 'यम' नामक है योगांड्ग, उसी के पांच प्रकार-
यहां गिनाये गये (कि आगें इनका परिभाषा-प्रस्तार ।।)
पहले 'यम' का नाम 'अहिंसा', दूजे का है 'सत्य' (पुनीत) ।
फिर, तीजा 'अस्तेय' तथा चौथा है 'ब्रम्हाचर्य' (सु-प्रतीत) ।।
अन्तिम, जो पांचवां पतञ्जलि उसे 'अपरिग्रह' कहते है ।
(इन पांचों को धारण करके साधक, उन्नति-गहते है ।।),

82- "जाति देशकाल समयानवाच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्।"
रहे 'जाति' (या जन्म) से कभी नहीं आबद्ध।
किसी देश (या स्थान) में कहीं न हो अवरूद्ध।।
रखे न कोई काल भी उसपर तनिक प्रभाव ।
हो संकेत-विशेष (या 'समय') का नहीं भाव ।।
सार्वभौम है 'यम', न तो उनमें हेर न फेर ।
उक्त चार प्रतिबंध की परिधि सके कब घेर ?
(अद्भुत) अनवाछिन्न हैं ये महिमा के स्रोत।
(इन्हीं महाव्रत में रहे गरिमा ओतः प्रोत)।।

83- "शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः ।"
'नियम' नामक दूसरे योगांग के भी तो–
निगाये है यहां ये पांच ही (पावन) प्रभेद ।
(मुनि पतंजलि ने कहीं यों रीति वह उत्तम–
हरे जो साधकों, सन्मार्गियो के सर्व खेद ।।),
पांच मे से प्रथम जोकि प्रभेदं, उसका 'शौच' है शुभनाम ।
दूजे को कहा 'संतोष' (सुखकर) तीसरा 'तप' और चौथा है कहा 'स्वाध्याय'–
(जिससे बन सके जीवन मुदित, शिव, सत्य, सुन्दर ।।)
पांचवां (अन्तिम) नियम 'परमेश्वर–प्रणिधान' संज्ञक है,
जिसे आगे सभी के साथ परिभाषित किया है–

84- "वितर्क बाधने प्रतपक्ष भावनम् ।"
'यंम' तथा 'नियम' के जो बन लें बाधक, 'वितर्क' (भयकारी)
उन सब विघ्नों पर होता है 'प्रतिपक्ष–भाव' जंयकारी ।।
जब हो वितर्क–बाधना तभी प्रतिपक्ष भावना कर ले ।
तो साधक (सत्वर) यम नियमो से योग–साध्य को वर ले ।।,

85- "वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभ–
क्रोध मोह पूर्वका मृदु मध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्त फला इति प्रतिपक्ष भावनम्।
जोयम नियमों के नित्य विरोधी हिंसा इत्यादिक है–
(साधना बने बाधित जिनसे) वे सब 'वितर्क' संज्ञक हैं।
'कृत' 'कारित' 'अनुमोदित', वितर्क यों तीन भाँति के होवे,
(जो परख नहीं कर सकें, सदाही वे क्लेशित रह रोवें।।
अपने द्वारा जो किये हुए हो उनको ही 'कृत' कहते ।
अन्यों से जोहों करा लिये, वे 'कारित' संज्ञा गहते।।
जिनका अनुमोदन किया, उन्हे 'अनुमोदित' समझा जावे।
(इन तीनों से अनभिज्ञमनुज कब निज को सुलझा पावे ?)
है कारण भी इन सबके, तीनों ही, जो यहाँ गिनावें।
हाँ, 'लोभ' 'क्रोध' औ 'मोह' सही तो निश्चित नाम बतावें।।
वे सब 'वितर्क', 'मृदु' 'मध्य' तथा 'अधिमात्रावाले' होते।
(इन तरू सम जो दुःखों, अज्ञानों के अनन्त फल देते ।।
बस, इसी तरह 'प्रतिपक्ष–भावना'' करना हितकारी है।
(सचमुच वितर्क बाधका यही विधि सुखदा, भयहारी है।)

86- ''अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ।''
जब (सु) साधक में अहिंसा की प्रतिष्ठा हो चुके ।
सर्व हिंसा भाव पूरे यत्न से वह खो चुके ।।
तब, निकटता जो करें उसकी, सभी निर्वेर हों ।
(अहिंसक-सान्निध्य में हो वैर कैसे और क्यों ।।),

87- ''सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफला श्रयत्वम् ।''
सुदृढ़ संस्थितिवान् हो जब सत्य में (शुचि) योग का साधक-
(या उसी में सत्य हो पावे प्रतिष्ठित पुण्य परिचायक ।।)
उस दशा में (विमल) सत्य प्रतिष्ठ योगी धन्य हो ।
(सत्य पर उसकी न क्यों अनुरक्ति, भक्ति अनन्य हो ?)
(शक्ति, वाणी में बढ़े इतनी कि जिसको देख, सब अचरज करें ।)
क्रियाओं के फल, उसी के वचन पर आश्रित रहे उसको वरें ।।
(शाप या वरदान, जो भी दे, सभी सुविवेक मय, सच सिद्ध हो ।)
आश्रयत्व लिये रहे सब क्रियाफल, (निर्भर बने, अविरूद्ध हो ।।),

88- ''अस्तेय प्रतिष्ठायांसर्वरत्नोपस्थानम् ।''
अस्तेय-प्रतिष्ठा, योगी में जब (सु) स्थिरता से हो जावे ।
तब तो सब रत्नों की उसको (सं) प्राप्ति सुगमतर हो पावे ।।
(चोरी का त्याग जमे उसमें, वह रमे स्वयं अस्तेय बीच ।
क्यों नही मिलें सब रत्न उसे ? कैसे न धुले कार्पण्य कीच ??),

89 ''ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः'' ।
वीरता या वीर्य का तब लाभ होता है (अहो)
ब्रहांचर्य-विरूद्धता जब तनिक साधक में न हो ।।
अपितु (सं) स्थिति ही (सु) दृढ़तासे रखे उसमे सदा-
वह सुगुण (जो ब्रहाचारी की प्रमुखतम सम्पदा) ।।
ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठा योगी वीर्य से भरपूर हो ।
लाभ यों वीरत्व का लेता कि क्षति से दूर हो ,

90- ''अपरिग्रह स्थैर्ये जन्म कथंता संबोधः'' ।
पूर्वजन्म क्या था ? कैसा था ? और कहाँ था ?
किस प्रकार यह जन्म हुआ ? क्यों मिला यहाँ का ??

अगला जन्म रहेगा कैसा ?–यों तीनो कालों की बातें–
हमें ज्ञात हों; इसी हेतु उत्सुक रहती इच्छा की पाँतें ।।
आत्मरूप की यह जिज्ञासा जैसे हो जाती निवृत्त है–
वैसे अत्युत्तम उपाय में सत्साधक रहता प्रवृत्त है ।।
(पातंजल दर्शन में निश्चित कहा कि) ऐसा तब संभव है–
जब (सु) स्थैर्य, अपरिग्रह का, हो सिद्ध–(कि उस ही से उद्भव है)
सचमुच 'जन्म कथंता' अथवा जन्मो का कैसा पन जाने–
इतनी क्षमता होती केवल उनमें जो यह विधि पहचाने ।।
करलें दृढ़तायुत 'अपरिग्रह' तो सम्बोध अवश्य हो सके ।
हाँ उन योग–परायण जन को जन्मों का साक्षात् हो सके।।

91– "शौचात् स्वांगजुगुप्सा परैरसंसर्गः" ।
ख्प्रथम नियम जो 'शौच' है उसके फल का ज्ञान–
यहाँ कराया जा रहा, (सत्साधक दें ध्यान ।।)
पहला फल मिलता यही, शौच–नियम को पाल ।
अपने अंगो से घृणा होती है तत्काल ।।
'स्वांग जुगुप्सा' नाम से किया सत्य–संकेत ।
योगशास्त्र ने कर दिया कृपया सजग, सचेत।।
कहा दूसरा फल, कि हो पर–संसर्गाभाव ।
(करे न अन्यों का, कहीं कुछ, सम्पर्क, प्रभाव ।।)
(इसमें फल–द्वय ही कहे, आगे कतिपय और ।)
कहे पतंजलि ने कि जो थे योगी– सिरमौर ।।,

92– "सत्वशुद्धि सौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्म दर्शनयोग्यत्वानि च" ।
ब्राह्य शौच से कह चुके ऊपर दो परिणाम ।
अब आभ्यन्तर से कहें यहाँ पाँच (अभिराम) ।।
'सत्वशुद्धि' या चित्त की पवित्रता हो जायें ।
फल, भीतर क शौच का, यही प्रथम, कहलाय ।।
'सौमनस्य' हो या बने मन अतिस्वच्छ, पुनीत ।
दूजा फल मिलता यही, जो न रखे भय भीत।।
फल तृतीय, 'एकाग्रता' नामक पावे दिव्य ।
सत्साधकयों शौच से बनता जावे भव्य ।।

'इन्द्रिय-जय चौथा सु-फल, जिसका अनुपम स्वाद
(कभी न वर्णित हो सके, सेवन का आह्लाद।।)
पंचम तो है महा-फल, पावें केवल धीर ।
(शौच-नियम-पालक सदा जो रहले व्रत-वीर ।।)
'आत्म-(सु) दर्शन-योग्यता'- उस फल का शुभनाम ।
यों सातों फल जो गहें, शतशत उन्हें प्रणाम ।।
दो हैं पिछले सूत्र के, वर्णित इनमें पॉच ।
शौच'-सिद्धि'-परिणाम सब (कहॉ सॉच को ऑच ??)
योग-परायण पतंजलि बतागये, करि जॉच ।
इसी कसौटी से परख, गहो रत्न, तजि काँच ।।),

93- "सन्तोषादनुत्तम सुखलाभः' ।
('संतोष' नाम का नियम दूसरा, जो ऊपर बतलाया है ।
उसका पावन परिणाम यहॉ थोड़े-से में समझाया है।।
जिससें बढ़कर सुख नही कही वह कहा अनुत्तम ऋषिवर ने ।
संतोषी उसको ही पावे-ऐसा जतलाया मुनिवर ने ।।
(हो सके अनुत्तम सौख्य-लाभ, 'संतोष'-नियम के पालन से ।)
कर के अनुभूति, पतंजलि ने सच कहा यही साधक जन से।

94- "कायेन्द्रियसिद्धिर शुद्धि क्षयात्तपसः" ।
'तप' जो तीजा नियम है, उसका यह परिणाम ।
हो अशुद्धि का पूर्णक्षय, बढ़े शुद्धि अभिराम ।।
काया एवं इन्द्रियाँ बन लें सिद्धि-निधान ।
(उस अशुद्धि-क्षय से यही मिले पुण्य-वरदान।।)
इस प्रकार (सं) शुद्धि से पा सकते है सिद्धि ।
(तप के फलकी तो, अहो, यही रही सु-प्रसिद्धि ।।)
(पातंजलदर्शन कहे कितनी सुन्दर बात ।
इसे मान, जो तप करे, बने योग-विष्णात ।।),

95- "स्वाध्यायादिष्ट देवता सं प्रयोगः" ।
चौथे नियम, 'स्वाध्याय' संज्ञक, से यही शुभफल मिले-
साक्षात् हो निज इष्ट का, (जिससे सु-साधक-उर खिले)
जो हो अभीष्ट (सु) देवता, उसका मिलन सम्भव बने ।

(सम्यक् प्रमुखतायुक्त ऐसे योग का उत्सव मने ।।)
यह 'सं–प्र–योग' सु–प्राप्य है केवल सतत स्वाध्यायं से ।
(मत मनोरथं पर ही चढो, पाओ विमल सदुपाय से ।।),

96– "समाधिसिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्" ।
पंचम नियम कहा गया जो 'ईश्वर प्रणिधान' ।
सु–फल कहें उसका यहॉ 'दर्शन'–कार सुंजान ।।
साधक जब यह व्रत गहे, रहे साधना शील ।
तब समाधि की सिद्धि में, कैसे, क्यो हो ढील ??
(कही पतंजलि ने, अहा, बड़े पंते की बात ।
स्वानुभूति–रवि–रश्मि से मानो कियां प्रभात।।),

97– "स्थिर सुखमासनम्" ।
सुस्थिर सौख्य मिले जिसके द्वारा, उसको 'आसन' कहते है ।
(यह योगांग तीसरा है, जिससे सु–सिद्धि साधक गहते है ।।)
सु–स्थायी सुखदायी जो हो वही योगदर्शन में 'आसन'–
(किया पतंजलि ने अतिही संक्षिप्त सूत्र से शुचि अनुशासन ।),

98– "प्रयत्न शैथिल्यानन्त्यसमापत्तिभ्यास्" ।
कैसे 'आसन' सिद्ध हो, इसका विरल उपाय ।
कहा सरल (ऐसा कि जो मति में तुरंत समाय ।।)
हो प्रयत्न की शिथिलता (या ढीली–सी देह ।)
निश्चित् विधि के बोधहित करो सिद्ध से नेह ।।
अथवा योगीवर्ग के है सद्ग्रंथ प्रमाण ।
तभी यत्नशैथिल्य का हो समक्ष में ज्ञान
समापत्ति, अनान्त्य में करना भी अनिवार्य ।
इन दोनां ही रीति से 'आसन' हैं, संधार्य।।
अपरिच्छिनन गगनादि में अनन्तता जो व्याप्त।
उसमें करो समाधि (यों कहें पत्रजलि आप्त)
समापत्ति की सविधि का लो प्रत्यक्षादेश।
या सत्साधक जनों के पढ़ो लिखित निर्देश।।
यहाँ किया संकेत ही, जिसका शुभ विस्तार ।
उत्तम सिद्धों ने किया, रख वैसा आचार ।।

99- 'ततो द्वन्द्वानभिघातः'' ।
(शीतोष्ण, दुःख सुख इत्यादिक) द्वन्द्वों का रहले अनभिघात ।
('आसन' सु-सिद्धि जिसको होवे उस पर न करें ये वज्रपात।।
सचमुच उसको इन द्वन्द्वो की थोड़ी भी चोंट नही लगती ।
अभिघातभयद कितना भी हो, पर देह न बिल्कुल डगमगती ।।,

100- ''तस्मिन्सतिश्वास प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः'' ।
आसन के (सु) स्थिर होने पर ही प्राणायाम किया जावे ।
(पातंजल दर्शन से प्रेरक निर्देशन यही लिया जावै ।
श्वासों प्रश्वासों की गति का विच्छेद (सविधि) करना होता ।
(इस भाँति साध्य की सिद्धि हेतु साधना-सिन्धु तरना होता।।)
जो प्राणायाम-रीतिवरदा, वह प्रामाणिक जन से जाने ।
अथवा सु प्रसिद्ध योगियों के लेखी निर्देशों का माने ।।),

101- ''बाह्याभ्यन्तर स्तम्भवृत्तिर्देश काल संख्याभिः परि-दृष्टो दीर्घसूक्ष्म'' ।
पूर्वोक्त प्राणायाम का है त्रिविध ही ऋषि ने कहा ।
(तीनों प्रकारो का यहाँ संकेत वर्णित हो रहा ।।)
लो, प्रथम का तो 'बाह्यवृत्ति' (सु) नाम से उल्लेख है ।
(यह स्वानुभव, प्रेरित विभाजन कुछ न संशय-रेख है ।।)
जो शुभ द्वितीय प्रकार, 'अन्तर्वृत्ति' उसका नाम है ।
(सु)'स्तम्भवृत्ति' तृतीय-सब मिल, एक प्राणायाम है ।।
परिदृष्ट या देखा हुआ यह देश एवं काल से-
जानो की संख्या से रहे संदृष्ट, सूक्ष्म-विशाल ये ।।
हल्का तथा लम्बा इसे यो सब सु-साधक जानते ।
(मुनिवर पतंजलि तो इसे योगांग चौथा मानते ।।),

102- ''बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी चतर्थः'' ।।
एक चौथा भी विशिष्ट प्रकार, 'प्राणायाम का-
है यहाँ वर्णित हुआ (जिससे अधिक सुखधाम क्या ?)
बाह्यअन्तर के विषय को फेंकने वाला वही ।
करे आलोचन (कि यह महिमा उसी की तो कही ।।)
(शब्द ही समझा सके इसको नहीं, सच मान लो ।
आर्षविधि का अनुसरण कर आचरण से जान लो ।।),

103- "ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्" ।

प्राणायाम-सिद्धि होने पर प्रकाशावरण क्षय हो जावे ।
(जो विवेक पर पड़ा हुआ पर्दा हो, फटकर लय हो पावे ।।)
नहीं ज्ञान आवृत रह पावे कि सी भाँति के तमोवलय में ।
(इस विषयक है कितना पावन, तेजोमय, शुभ योगसूत्र ये ।।)

104- "धारणासु च योग्यता मनसः" ।

एक विशिष्ट लाभ, जो साधक प्राणायाम-सिद्धि से पाता-
यही कि मन, योग्यतायुक्त उसका, (सु) धारणा में हो जाता ।।,

105- "स्व विषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणाम प्रतयाहारः" ।

इन्द्रियाँ, स्व-विषयौ से रखती जब थोड़ा भी संबंध नहीं ।
(या 'अ-संप्रयोग' रहे, विषयों के संग न हो उपलब्ध कहीं ।।)
वे करे अनुकरण-सा उसका, जो कुछ कि चित्त का है स्वरूप ।
तब 'प्रत्याहार'.कहाता हैं (योगांग पाँचवाँ, शुचि, अनूप।।)
(दूजे शब्दो में, यो कहलो, इन्द्रिगण करे नकल-सी जब-
उसकी जो है निजरूप चित्त का 'प्रत्याहार' हो वही तब ।।
उस समय स्वयं के विषयों से वे असंबद्ध हो जाती है।
अनुकार समान चित्त के प्रति चेष्टाएँ भी अपनाती है ।।),

106- "ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम्" ।

प्रत्याहार सिद्ध करने से इन्द्रियगण पर हो अधिकार ।
मिले परमवश्यत्व और जीवन का हो जावे उद्धार ।।
वशीकार उत्कृष्ट रूप में जबकि इन्द्रियों का होता ।
साधक तब सोपान, पॉचवें, पर चढ्कर पुलकित होता।।,

(इति साधन पादः)
द्वितीय पाद समाप्त हुआ,

----00-----

तृतीय पाद (विभूति पाद)

107- ''देशबन्ध चित्तस्य धारणा ।''

जब किसी देश-विशेष में आबद्ध रहता चित्थ्त हो ।
इतना कि उसकी वृत्ति ही उसका अकेला वित्त हो ।।
तब 'धारणा' (जो षष्ठ है योगांग) उसकी सिद्धि हो ।
(सत्साधना के क्षेत्र में पावे सु-साधक ऋद्धि को ।।)
वे देश या संस्थान, जिनमें चित्त बांधा जा सके ।
द्विविध हैं, यों कह उभय की, सिद्ध, महिमा गा चुके ।।
लो, एक आध्यात्मिक बताये देश जैसे उर-कमल,
नाभि, या नासाग्र, भृकुटी, ब्रह्रंध्र (परम विमल) ।।
ये तथा (सु) स्थान आत्मिक अन्य भी इनके समान ।
(क्यों नहीं पहचान पावें शुचि व्रती, योगी सुजान ।।)
चन्द्र अथवा ध्रुव प्रभृति को बाह्य देश बता दिया ।
'धारणा' है साध्य, इनमें भी (सु-तंत्व सुझा दिया ।।)
(योग्यता, रूचि आदि के अनुसार कोई देश चुन-
चित्त को बांधूँ उसी में, बस, रहे यह एक धुन ।।)

108- ''तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।''

('ध्यान' किसे कहते हैं, इसका उत्तर यहां दिया जाता ।)
(पातंजल दर्शन के ही विवरण को सुगम किया जाता ।।)
वृत्तिमात्र से लगे ध्येय में चित्त 'धारणा' के द्वारा ।
और उसी धारित (सु) वृत्ति की रहपावे अविरल धारा ।।
(हाँ, वह वृत्ति-नदी जब रखले निज प्रवाह को एक समान
लगातार हो उदित वही, आसके न अन्य वृत्ति-व्यवधान ।।
यों लो उदाहरण कि 'घटोअयम्' यदि धारणा बनाई हो ।
तथा बनी यह रहे एक ही, दूजी वृत्ति न आई हो ।।)
तो कह देगें 'ध्यान' कि जिसका 'एकतानता' है लक्षण ।
(योग-मार्ग में इसकी महिमा, गरिमायुता, न साधारण ।।)

109- ''तदेवार्थ मात्र निर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः ।''

(अर्थ मात्र से ध्येय जिस समय भासित होता है केवल ।

तथा ध्यान का भी स्वरूप जब रहे शून्य जैसा अविकल ।।)
तब 'समाधि' कहलावे शुचि साधक योगी का ध्यान वही ।
(पांतजलदर्शन में जिसकी सीधी यह पहचान कही ।।)

110– "त्रयमेकत्र संयम :।"
(धारणा, ध्यान एवं समाधि जब एक विषय में रहते है ।
तब उस एकत्र अवस्था में तीनों को 'संयम' कहते है ।।)
कह 'त्रयमेकत्र संयम':' पांतजल–दर्शन बतलाता है ।
योग योसूत्र से योगी की अतिउक्त दशा जतलाता है।।

111– "तज्जयात्प्रज्ञालोकः ।"
(संयम जो वर्णित हुआ ऊपर भली प्रकार ।
उसके विजयी को मिले शुभालोक अविकार ।।
शुचि समाधि प्रज्ञा करें साधक में (सु) प्रकाश ।
हॉ, संयम–जय से कटें रजोतमोगुण–पाश ।।)

112– "तस्य भूमिषु विनियोगः ।"
(चित्त भूमियों में संयम का साधक जब विनियोग करें ।
तब निश्चय ही योगसिद्धि को वे सत्वर साह्लाद बरें ।।
संयम जो पूर्वोक्तसूक्त में वर्णित वही लगाना है ।
सत्साधनाशील योगी को यों उत्तम फल पाना है ।।)

113– "त्रयमन्तरंग पूर्वेभ्यः।"
(सम्प्रज्ञात समाधि के अन्तरंग हैं तीन ।
जिन्हें "धारणा" "ध्यान" औ कहें "समाधि" प्रवीण ।।
जो प्रारंभिक पांच हैं शुभ योगांग पुनीत ।
बनें, अपेक्षा से इन्हीं पॉचों की, विख्यात–
अन्तरंग–ध्यानादित्रय–पातंजल–व्याख्यात ।।)

114– "तदपि बहिरंग निर्बीजस्य ।"
धारणा, ध्यान औ समाधि को, जो अन्तरंग बतलाया है ।
उनका सबीज ही समाधि से वैसा नाता दरसाया है ।।
ये तीनों भी बहरंग बनें जब हो समाधि निर्बीज (भली)

(सुखमयी) 'असम्प्रज्ञत' वही जिसकी महती गुणावली ।।
हैं 'सम्प्रज्ञात' 'स-बीज'-उभय-पर्यायवाचिनी संज्ञाऐं ।
'निर्बीज' 'असम्प्रज्ञात' (इसी विधि से) एकार्थि व्यजनाऐं ।)

115- "व्युत्थान निरोध संस्कार योरभिभव प्रादुर्भावो निरोध-
क्षण चित्तान्वयो निरोध परिणामः" ।
जबकि उभरतीं चित्तवृत्तियाँ तब 'व्युत्थान' कहा जाता ।
उसके संस्कारो का दबना 'अभिभव' की संज्ञा पाता ।।
वे ही वृत्ति निरूद्ध रहें तो उसे निरोध बताते हैं ।
जो उसके संस्कार प्रकट हो प्रादुर्भाव कहाते हैं।
इन दोनों ही संस्कारों में अनुगत चित्त हुआ करता ।
वह निरोध-क्षण मं इनसे अन्वित सु-निरूद्ध रहा करता ।।
इसी अवस्था का निरोध-परिणाम रखा है नाम सरल ।
(मिले उसी योगी को वह जिसकी आस्था हो शुचि, अविचल।।)

116- "तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात" ।
जो जुड़े (सु) निरोध के संस्कार की शुभ सम्पदा ।
तौ प्रशान्त प्रवाहवाली चित्तगति हो सुखप्रदा ।।,

117- "सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधि परिणामः" ।
चित्तनामं वाले धर्मो के दोही धर्म बरवाने ।
(पातंजल दर्शन में ऋषि ने.इस प्रकार है माने।।)
'सर्वर्थता' कहा पहल को, एकाग्रता अपर को ।
(इन धर्मो पर ध्यान, साधनाशील रखें, तत्पर हो ।।)
क्रम से इनके 'लय' समुदय को ही समाधि परिणाम ।
कहा पतंजलि ने (कि चित्त की दिव्य दशा का नाम ।।),

118- "ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययो चित्तस्यै का ग्रता परिणामः" ।
चित्त का एकाग्रता-परिणाम कहते हैं महायोगी पतंजलि अब यहॉ ।
(पूर्वगामी सूत्र से इसका रहे अलगाव- क्योंकर, कब, कहॉ ??)
उस दशा की वृत्तियॉ जो, तज विषमता, हो समान ।
वे पुनः दब उभरकर हों तुल्य प्रत्यय-पुंजसम ही भासमान ।।
शांत एवं उदित होना, वृत्तियो का, तो अतिगहन है विषय, कुछ इंगित किया ।
(वह सु-साधक है जिसने.गूढ-आशय परख वरदा साधना को वर लिया ।।),

119- ''एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्था परिणाम व्याख्याताः'' ।
पंचभूत में एवं इन्द्रियगण में जो जो हों परिणाम।
उन सबके भी (कृपया ऋषि ने) केवल यहाँ गिनाये नाम ।।
'धम' अवस्था लक्षण ये तीनों परिणाम समझ लेना ।
(हे साधक-वर ! आस्थापूर्वक भ्रान्ति सब तज देना ।।)
कहा चित्तपरिणाम पूर्व में परिभाषा करके जैसा ।
उससे ही व्याख्यात जानना इसको भी बिल्कुल वैसा ।।,

120- ''शान्तोदिता व्यपदेश्य धर्मानुपाती धर्मी'' ।
जो अतीत या शांत धर्म है उनमे धर्मो अनुगत है ।
वर्तमान या उदितों में भी वही सदा रहता रत है ।।
जो व्यपदेश्य नही ऐसे भावी धर्मो का अनुपाती ।
है धर्मी या चित्त सर्वदा, यह अनुगति उसको भाती ।।
यहां 'धर्म' एवं धर्मी का सद् विवेक आवश्यक है।
योग-सूत्र का स-क्रिय आशय समझे, वही सु-साधक है ।।

121- ''क्रमान्यत्वं परिणामन्यत्वे हेतुः'' ।
क्रमों का भेद, परिणाम, भेदो का, समझलो हेतु साधक-वर ।
किया इंगित पतंजलि ने जिसे जानो सतत रह साधना-तत्पर ।।,

122- ''परिणामत्रय संयमादतीतानागत ज्ञानम्'' ।
तीनो परिणामों में संयम देता है यों फल का दान ।
भूत भविष्यत् का हो जावे सत्साधना-शील को ज्ञान ।।
वह संयमी, अतीत अनागत का बनता पूरा ज्ञाता ।
(उससे छुपने जैसा कुछ भी कहीं नहीं रहने पाता ।।),

123- 'शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरस्तत्प्रविभाग संयमात् सर्वभूतखज्ञानम्'।
जब पारस्परिक प्रतिष्ठा हो या इतरेतर अध्यास विमल ।
सब शब्द, अर्थ औ ज्ञानो का संकर हो या अविभेद विरल ।।
तब उनके प्रविभागो में ही संयम से यह विभूति मिलती ।
जितने भी प्राणी है सबके रब की (सु) ज्ञान-कलिका खिलती ।।
योगी को प्राणिमात्र के शब्दो का सुबोध हो जाता है ।
मानव-रव की सीमा से बढ संकुचितभाव खो जाता है ।।,

124- "संस्कार साक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्" ।
जो योगी संस्कारो का साक्षात्कार कर लेता है ।
पूर्व जन्म का उसे ज्ञान हो, प्रभु ऐसा वर देता है ।।
क्या संस्कार शब्द से आशय है, यह पहले बता दिया ।
सिद्धि-प्राप्ति जिनसे होती है उन साधन का पता दिया ।
यहाँ विभूति-पाद में तो केवल उपलब्धि गिनाई है ।
भाँति भाँति की शक्ति मिले जैसे, वे रीति बलाई हैं ।।
ये भी हैं संकेतमात्र ही, गुरूजन से जानो विस्तार ।
क्या विभूति कैसे पाओ, इस हेतु लखो उनके व्यवहार",

125- "प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम्" ।
दूसरे के चित्त का साक्षात् करने से (अहो) –
ज्ञान हो पर-चित्त का, (इसमें तनिक व्यत्यय न हो)।।

126- "नच तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात्" ।
जो पूर्वगानी सूत्र में पट्चित्त-ज्ञान बता दिया ।
है शर्त उसमें एक (जिसका बोध हेतु पता दिया ।।)
दूसरे का चित्त, संयम का विषय तब तक नही-
शेष कुछ आलम्बनो की रेख भी जब तक रही ।।
निज विषय क सहित उसका हो नही साक्षात्कार ।
(निरालम्बन रूप में ही शक्य है दर्शन विहार ।।),

127- "कायरूप संयमात तद् ग्राह्यशक्ति स्तम्भे चक्षुः
प्रकाशा सम्प्रयोगे अन्तर्धानम्" ।
निज शरीर के रूप में, यदि संयम हो जाय ।
तो (सु) रूप ग्रहणीयता, योगी की, खो जाय ।।
ग्राह्यशक्ति जो रूप की, रोके, वही सुजान ।
इस प्रकार हो पायगा, सत्वर अन्तर्धान ।।
(सु) स्तम्भित हो, रूप की, जब (सु) शक्ति संग्राह्य।
तब अन्यों की हष्टि से, रहे तन अवगाह्य ।।
जो लोगों के चक्षु का, सीमा-सहित, प्रकाश ।
योगी की काया नही, उसके, रहे सकाश ।।
सं निकर्ष, जन-ज्योति से, रखे न उसका देह ।
(इसीलिये तो सिद्धि वह पावे निस्सन्देह ।।),

128- "सोपक्रमं निरूपक्रमं च कर्म तत्संयमादूपरान्तज्ञान मरिष्टेभ्यों वा" ।
उपक्रम सहित और उससे रहित, कर्म यों द्विविध कहा ।
(पतंजल दर्शन मं इसके लिये सूत्र ये अलग गहा ।।)
तीव्रवेगवाला अथवा आरम्भसहित है सह उपक्रम,
मन्द वेगवाला अथवा आरम्भरहित ही निरूपक्रम ।।
दोना प्रकार के कर्मो मे संयम से हो 'अ-परान्त' ज्ञान ।
(अर्थात् मृत्यु को सही सही सत्साधक निश्चय सके जान ।।)
इसके अतिरिक्त अरिष्टो से अथवा उलटे चिह्नो द्वारा-
होता है मरण-ज्ञन (यह भी योगी ऋषिवर ने उच्चारा ।।),

129 "मैत्र्यादिषु बलीनि" ।
(हुआ समाधिपाद में वर्णन, तेंतीसवे सूत्र द्वारा-
जिन मैत्री इत्यादि गुणो का, यहाँ उन्हीं को विस्तारा ।।)
करे मित्रता में जो संयम उसको सख्य शक्ति मिलती ।
(इस गुण के बल की कलिका, करूणा में संयम से खिलती ।।
मुदिता मे जिसका संयम हो उसमें वह बढ़ जाती है ।
तथा उपेक्षा में संयम से वैसी क्षमता आती है ।।)
इन चारों में जो सत्साधक, श्रम से संयमशील बने ।
उसका ये मैत्री आदिक बल मिलते हैं, (सुख-पर्व मने ।।),

130- " बलेषु हस्ति बलादीनि" ।
जब हाथी इत्यादि के बलो में संयम सध जाता है ।
तब उन उन बल का ही साधक (शुभ विभूतिवत्) पाता है ।।,

131- "प्रवृत्यालोकन्यासात्सूक्ष्मव्यवहित विप्रकृष्ट ज्ञानम्" ।।
(छत्तीसवाँ, समाधिपाद का, सूत्र करें जिसका वर्णन ।
मन की उसी प्रवृत्ति का यहॉ किया विभूतिपरक प्र-कथन ।।
ज्योतिष्मती प्रवृत्ति वही जब निज प्रकाश फैलाती है ।
वस्तु, इन्द्रियातीत परे, व्यवहित भी तब दिखलाती है ।।
सब सूक्ष्म पदार्थ ज्ञात होते, आडों वाली चीजें खुलती ।
जो वि-प्र-कृष्ट या हों (सु) दूर की, वे वस्तुऍ विदित बनतीं ।

132- "भुवनज्ञानं सूर्यसंयमात्" ।
सातो लोकों में हैं जितने भुवन, सभी का होवे ज्ञान ।
जब संयम हो सूर्य लोक में, तब विभूति यह मिले (निदान) ।।,

133- "चन्द्रे ताराव्यूह ज्ञानम्" ।
बने चन्द्र में संयमी ज़ो (सं) सिद्ध सुजान ।
ताराओं के व्यूह का; उनको हो (परि) ज्ञान ।।
है नक्षत्रों का नियत जो (सु) स्थान विशेष ।
ऐसे संयम से करें उसको ज्ञात (अशेष) ।।,

134- "ध्रुवे तद्गतिज्ञानम्" ।
जो ध्रुव में संयम करे योग-सुधा-निष्णात ।
गति होवे निश्चय उन्हें तारो की परिज्ञात ।।

135- "नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् " ।
(जब नाभिचक्र में योगी संयम कर लें ।
तब काया-रचना की प्रज्ञा को वर ले ।।
कैसा है देह-व्यूह, इसको वह जाने ।
जो संयम का व्रत, उक्त रीति से, ठाने ।।)

136- "कण्ठकूपे क्षुत् पिपासा निवृत्तिः ।"
(क्षुधा, पिपासा की निवृत्ति भी योग-साधना में संभव है ।
कण्ठकूप में (विधिवत्) संयम करने से इसका उद्भव है ।।
(कुछ कुछ कुएँ समान, गले में गड्डा जो भीतर संस्थित है ।
उसमें हो धारणा, ध्यान एवं समाधिः यह निर्देशित है ।।
यही पतंजलि का उत्तम आदेश करें जो साधक धारण-
भूख प्यास का वह संयमधारी, अवश्य कर सके निवारण ।।)

137- "कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ।"
(सु) स्थिरता की प्राप्तिरूपिणी-यदि विभूति चाहो, साधक-वर !
तो संयम तुम करो कूर्मनाड़ी में (सावधान रह, श्रम कर ।।)
इस नाड़ी को तथा सु-संयमविधि को भलीभांति, प्रिय जानो ।
कभी अयोगी अनभ्यासियों की बातों को तनिक न मानो ।।)

138- "मूर्द्ध ज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ।"

(जिसने मूर्द्धा की (सु) ज्योति में संयम करने का व्रत ठाना ।
उसे सिद्धजन के दर्शन का शुचितर सौख्यमिले मनमाना ।।)
(कैसा होता है प्रकाश वह, संयम उसमें किस प्रकार हो ?
किसी योगनिष्णात आप्त से जानो इसके सु-विस्तार को ।।)

139- "प्राप्तिभाद्वा सर्वम् ।"

(सतत साधना से जब उपजे शुभ विशिष्ट प्रतिभा, साधक में
तब भी सब कुछ उसे ज्ञत होता, हटते जो जो बाधक है ।
("प्रतिभाद्वा सर्वम्" कहकर वैकल्पिक महत्व दर्शाया ।
पुण्य-प्रधान पतंजलि ऋषि ने अनुपम योगामृत वर्षाया ।
योगी को सब विदित हो सके प्रातिभ सुविज्ञान के द्वारा ।
पातंजलदर्शन के पावन योगसूत्र ने यह उच्चारा ।।)

140- "हृदये चित्तसंवित् ।"

(बने चित्त का सम्यक् वेत्ता वह जो उर में करले संयम ।
इस विभूति का यहां किया है योग सूत्र ने वर्णन अनुपम
हृदय कहाॅ, कैसा है, क्या है ? उसमें संयम किस विध होता ?
सिद्धों से यह सीख सके तो सत्साधक निज कल्मष धोता ।।)

141- "सत्वपुरूषयोरत्यन्त संकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषों-
भोगः परार्थान्यस्वार्थ संयमात् पुरूषज्ञानम् ।"

('चित्त' और 'चिति' कोही क्रमशः 'सत्व' औ' 'पुरूष' बतलाया है।
इन्हें परस्पर, मुनिवर ने, अत्यन्त भिन्न कह जत लाया है।।
इन्हीं उभय की प्रतीतियों का जो अभेद, वह भोग कहावे ।
'स्वार्थ' 'परार्थप्रतीति' नाम से योगसूत्र दो भेद सुझावे ।।
उनमं से भी परार्थ से अन्य भिन्न है 'स्वार्थ' नामिका-
उस प्रतीति में यदि संयम हो तो प्रज्ञा हो पुरूषज्ञापिका ।।
यही आत्मसाक्षात्कार भी सहजभाव से कहला सकता ।
(सत्सधिक यो अपने को प्राज्ञ सरिता में नहला सकता ।।)

142- "ततः प्रातिभ श्रवण वेदनादर्शास्वादवार्ता जायंते" ।

(पूर्वसूत्र मे जिसका वर्णन योगी ऋषि ने किया हुआ है ।
उसी स्वार्थ संयम का सत्पारिणाम सुनो, यह दिया हुआ है ।।

वह संयम जिस अभ्यासी को सध जावे, उसमे सु–ज्ञान हो ।
छः जिसके प्रकार वर्णित है वही ज्ञान (सद्‌गुणनिधान) हो ।।
(क्रमशः उन्हीं छहों का विवरण यहॉ पतंजलि ने दे डाला ।
तदनुसार गूँथी जाती है उन ज्ञान की मृदुला माला ।।)
पहला है 'प्रातिभ' जिसके द्वारा निम्नांकित मिले योग्यता ।
(मन में बढ चढ्कर आती है नीचे लिखे ज्ञान की क्षमता।।)
सभी अतीन्द्रियकिंवा सूक्ष्म पदार्थो को साधक पहचाने ।
व्यवहित अथवा छुपी हुई एवं दूरस्थ वस्तुएँ जाने ।।
वे सब चीज़े उसे विदित हो जोकि अनागत या आगामी ।
वस्तुमात्र जो हुई अतीता, हो उनका भी ज्ञाता नामी ।।
दूजा 'श्रावण ज्ञान' कि जिससे दिव्य शब्द साधक सुन पाता ।
कानों से सुदूर के शब्दो को सुनले यह भी बल आता ।।
है तीजा, 'वेदना–ज्ञान', यह त्वचा नामिका इन्द्रिय को हो ।
उसे दिव्य (सं) स्पर्श जानने की योग्यता मिले (वर सम जो)
चौथा है आदर्श ज्ञान अथवा नेत्रेन्द्रिय की सुयोग्यता ।।
जिसके द्वारा वह पाती है दिव्यरूपलखने की क्षमता ।।
अब 'आस्वाद' नाम का जो पॉचवा ज्ञान है, उसका लक्षण–
बतलाते है (स्वानुभूति से, कृपया ऋषिवर योगविचक्षण ।।)
जब रसनेन्द्रिय सक्षम यो होती कि दिव्यरस उसे ज्ञात हो ।
तब उसने आस्वाद योग्यता पाई– ऐसा सुविख्यात हो ।।
छठा ज्ञान है 'वार्ता' संज्ञक, जो घ्राणेन्द्रिय की क्षमता है ।
दिव्यगंध जो सूँघसके साधक इतना सुयोग्य बनता है ।।

143– "ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः" ।
(प्रातिभ, श्रावण आदि सिद्धियाँ पूर्वसूत्र में छहों जो कहीं ।
वे समाधि में साधक जन को विघ्नरूपिणी सतत ही रही ।।
केवल व्युत्थानो में उनको 'सिद्धि' पतंजलि ऋषि ने माना ।
समापत्ति में तो निश्चय से बाधक या उपसर्ग बरखाना ।।)

144– "बन्धकारण शैथिल्यात् प्रचार संवेदनाच्च चित्तस्य पर शरीरावेशः" ।
(पर–शरीर में कैसे हो आविष्ट चित्त (या सूक्ष्म–शरीर)
अब इसका उत्तर देते है (विज्ञ पतंजलि योग–प्रवीर ।।)

शिथिल करे वे कारण, साधक जिनसे बंध हुआ करता ।
साथ–साथ वह पथ भी जाने जहाँ चित्त घूमा करता ।।
(इन दोनो की विधि, सिद्धों से प्राप्त, यथावत् जा कर ले ।
वह अवश्य ही इस विभूति को, बन साधना शील, वर ले ।।)

145– "उदानजयाज्जलपंक कंटकादिष्वसंग उत्क्रांतिश्च" ।
(संयम द्वारा जो उदान को जीत सकें साधनाशील जन–
मिले उन्हें दो दो विभूतियाँ (जिनका यहाँ किया है वर्णन)
पहली यही कि पानी, कीचड, कण्टकादि से वह असंग हो ।।
(यह सुसिद्धि रह ले सुस्थिर ही, चाहे कोई भी प्रसंग हो ।।
सुनो, दूसरी जो विभूति है उसकी महिमा को पहचानो ।
कहा पतंजलि ने उसको "उत्क्रान्ति" नाम से (यह भी जानो) ।।
जल, कर्दम औ कण्टकादि में योगी सदा ऊर्ध्वगति रहता ।
ये दोनो ही शुभविभूतियाँ सत्साधक संयम से गहता ।।)

146– "समानजयाज्ज्वलनम्" ।
(योगी का दीप्तिमान होना संभव बनता 'समान–जय' से ।
(संयम द्वारा ही यह विभूति मिलती है उसे गुणोदय से ।।
धारणा ध्यान एवं समाधि जब समान को जितवा देवें ।
तब उसी वायु पर जय के क्रम (शुभ) ज्वलन–सिद्धि मिलवा देवें)
होता (सं) दीप्त (सु) साधक है, उसमें विशिष्टता आ जाती ।
उसकी चित्ति का गौरव बढ़ता जीवन में सात्विकता आती" ।।

147– "श्रोत्राकाशयोः संबंध संयमाद्दिव्यश्रोत्रम" ।
(आकाश और कर्णोन्द्रिय का संबंध जो (सहज स्वाभाविक)
उसमें संयम करने से ही, वर दिव्य श्रोत्रयुत हो साधक।।)

148– "कायाकाशयोः सम्बंधसंयमाल्लघुतूल समापते श्चाकाशगमनम्" ।
(आकाश–गमन की सिद्धि प्राप्त जिस विधि से होती, वह जानों
(पातंजल दर्शन के द्वारा उस विभूति को तुम पहचानो ।।
आकाश और काया का जो सम्बंध, उसी में कर संयम–
योगी को सत्वर मिल सकती है सिद्धि सुपावन यह अनुपम ।।
जो रूई आदि हल्के पदार्थ उनमे जब समापत्ति कर ले ।
तब इस विभूति को सत्साधक वैसी समाधि द्वारा वर ले ।।)

149- "वहिरकल्पितावृत्तिर्महाविदेहाततः प्रकाशावरण क्षयः" ।
(जो तन से बाहर, अकल्पिता महा विदेहा वृत्ति वही ।
उससे प्रकाश का हो जाता आवरण नष्ट, यह बात सही ।।
(कैसे कब किसको वह मिलती है यह सब सिद्धो से जानो ।
है सत्साधक । इस योगसूत्र के संकेतों को तुम पहचानो ।।)

150- 'स्थूल स्वरूप सूक्ष्मान्वयार्थवत्व संयमाद् भूतजयः" ।
(जब पंचमहाभूतो के पाँचो स्वरूपादि में संयम हो ।
तब होता वह भूतों का जय (है सिद्धि अनूठी उत्तम जो)
(इस योगसूत्र ने जो इंगितकर दिया, उसे हे विज्ञ ! गुनो ।।)
पहले का है (सु) स्थूल नाम (जिसका आशय समझो ऐसा-
है यहाँ सुवर्णित भी वैसा, पातंजल विवरण में जैसा ।।
पाँचो भूतों का जो विशिष्ट निजनिज आकार हुआ करता ।।
उनमें संयम करके योगी भूतों पर विजय सदा वरता ।।
दूजे को है कहते 'स्वरूप' जो पंच भूत का नियत धर्म ।
जिनसे वे जाने जाते हैं (या होता उनका विदित, मर्म) ।।
जो पाँचों सूक्ष्मभूत का है कारण वह सूक्ष्म कहा जाता ।
(जिसको तन्मात्राओ की भी संज्ञा से ही समझा जाता)
(तीसरे, सूक्ष्म संज्ञक, से जो अगला) चौथा है वह अन्वय ।
(उसका शुचि आशय कुछ कुछ यो जानो है साधक गौरवमय ।।)
जो पंचभूत में तीनो गुण अन्वयीभाव से रहते है ।
उनके ही कारण योगपरायण इसको अन्वय कहते है ।
अपने प्रकाश ओ क्रिया तथा (सं) स्थिति (सु) धर्म से रहते वे-
तीनो ही गुण जिनका विवरण इस अन्वय के प्रकरण में है ।।
पंचम है अर्थवत्व नामक जिसका तात्पर्य सखे जानो-
सम्बद्ध योगसूत्रानुसार यह सरल विवेचन सच मानो ।।
है जिसके लिये कार्य में रत पाँचों ही भूत सदैव यहाँ ।
उस भोग तथा अपवर्ग के सिवा, अर्थवत्व है और कहाँ ।।
वास्तविक प्रयोजन यही पुरूष का है (इसमें सन्देह नही) ।
इसमें संयम के बिना हो सके भूतो पर जय नही कही ।।
इन पाँचो भूतों के पाँचों पूर्वोक्त प्रकारो में संयम-
दिलवा सकता है यह विभूति जो सचमुच सुभग सिद्धि अनुपम।।)

151– "ततोअणिमादि प्रादुर्भावः कायसंपद्धमनिभिघातीच" ।
(उसी भूत जय का यहाँ अब परिणाम विचार ।
जो है पिछले सूत्र में वर्णित भले प्रकार ।।
अणिमा गरिमा आदि जो अष्ट सिद्धि विख्यात ।
उनका प्रादुर्भाव हो इसी विजय से, (तात) ।।
बढे कायसंपत अधिक, यह द्वितीय परिणाम ।
(देहसंपदा वृद्धि से जगभर करे प्रणाम ।।)
पातंजल दर्शन कहे तीजा फल भी धन्य ।
(जिसका विवरण देरहा यो शुभसूत्र अनन्य ।।)
पंचभूत के धर्म से अनभिघात हो सिद्ध ।
(उन धर्मो से कब रूके भूतजयी सु–प्रसिद्ध ।।)

152– "रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि कायसंपत्" ।
(क्या है शरीर सम्पदा कि जिसकी वृद्धि भूतजय से होती ।
शुचिमति मुनि श्रेष्ठ पतंजलि की, है अब यह ज़िज्ञसा खोती ।।
वे कहते हैं कि वज्र के सम जब योगी का तन हो जावे ।
(शुभ) शक्ति, सलौनापन, सुरूपता उभर देह में जब आवे ।।
तब कहलाती है वही काय संपत (यह योगसूत्र कहता ।
इस गौरव को सत्साधक ही संयमरूपीश्रम से गहता")

153– "ग्रहण स्वरूपास्मिता न्वयार्थवत्व संयमादिंद्रिय जयः" ।
(जैसे पाँचो भूतों का जय पहले वर्णित हो चुका (भला)
वैसे ही अब इन्द्रियजय की ऋषि बतलाते विधि (विमला) ।।
इन्द्रियगण के जो पाँच रूप, उनमें संयम से विजय मिले ।
(इस प्रिय विभूतिरूपीरवि से योगी का जीवन–कमल खिले)
पाँचो रूपों में से पहला कहलाता 'ग्रहण' (उसे जानो)
विषयाभिमुखी जब वृत्ति, इन्द्रियों की हो तब ही यह मानो ।।
है नाम दूसरे का स्वरूप जिसका आशय कुछ यों परखो ।
वह प्रकाशक–त्व, इंद्रियों का सामान्य रूप से है (निरखो)
'अस्मिता' नाम वाला तीजा है रूप कि जो इन्द्रिय कारण ।
(पहचाने अहंकार कहकर बहुधा जिसको जन साधारण ।।)
चौथा अन्वय जिसका लक्षण बतलावे योगी इस प्रकार–

(यद्यपि अनुभव से ही सम्भव है विवेचनायुत सु–विस्तार।।)
अन्वयीभाव से अनुगत हैं तीनों गुण जो इन्द्रियगण मे-
वे ही प्रकाश औ क्रिया तथा (सं) स्थिति धर्मो से अन्वय है ।।
पाँचवाँ रूप है अर्थवत्व जिसका तात्पर्य प्रयोजन है ।
वह द्विविध कि जिसका भोग तथा अपवर्ग, उभय नामांकन है ।।
(इन पाँचो रूपो में संयम सचमुच विभूति दिलवाता है ।
इन्द्रियजय की सुसिद्धि को यह सत्साधक से मिलवाता है ।।)

154– "ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधान जयश्च" ।
(जिस इन्द्रियजय का हुआ अभी विवेचन भव्य ।
उसके फलत्रय का यहाँ समुल्लेख है दिव्य ।।
पहला मनोजवित्व या वेगवान हो देह ।
मन के जैसा वेग तन पावे निस्सन्देह ।।
दूजे विकरण भाव का यो समझो अभिप्राय ।
(कहता आया है जिसे योगसिद्ध समुदाय ।।
अर्थज्ञान, दूरस्थ, जब इन्द्रिय गण में आय।
तब अत्युत्तम योग्यता उनको सब मिल जाय ।।
है प्रधान जय तीसरा इन्द्रियजय–परिणाम ।
सब प्राकृतिक विकार का वशीकार, अभिराम ।।)

155– "सत्वपुरूषान्यता ख्याति मात्रस्य सार्वभावाधिष्ठा तृत्वंसर्वज्ञातृत्वं च" ।
(चित्त और चिति भिन्न भिन्न है इसको जो साधक जाने ।
सत्व औ पुरूष के विभेद को भली भाँति जो पहचाने ।।
वह सारे भावों का मालिक तथा अधिष्ठाता बनता ।
सबकुछ उसे ज्ञातवत् होता,उसमें ज्ञान–पर्व मनता ।।
इन दोनो विभूतियों की संप्राप्ति साधना से होती ।
चित्तं और चिति के विवेक से मिलते ये दुर्लभ मोती ।।)

156– "तद् वैराग्यादपि दोषबीज क्षये कैवल्यम्" ।
(जब सर्वदोष के बीजो का क्षय हो तब ही कैवल्य मिले ।
(रविरश्मिरूप साधनासिद्धि से सुमनरूप वैराग्य खिले ।।)
हो चुके विवेकख्याति से भी जब साधक में पूरा विराग ।
केवल उस दिव्यदशा मे ही (सं) सिद्ध बने वह महाभाग"

157– "स्थान्युपनिमंत्रणे संगस्मयाकरणं पुनरनिष्ट प्रसंगात्" ।
(किसी भौतिकी भी विभूति को पाने पर जो आदर मिलता ।
उन (सु) सिद्धियों के (सं) स्थानी जन से जो अभिनन्दन मिलता
उसे उपनिमन्त्रण की संज्ञा देता है पातंजल–दर्शन ।
उसमें सत्साधक लगाव कुछ भी नहीं रखे, (यह शुभ–निर्देशन)
नही समादर पा घमण्ड का लेशमात्र योगी मे आवे ।
(अहंकार का असुर कहीं से नहीं तनिक भीं उसे दबावे ।।)
यदि लगाव अथवा घमण्ड हो तो प्रसंग ऐसा आ सकता ।
जिसमे फिर अनिष्ट–भय बढ़कर, साधक अवनति भी पा सकता ।।

158– "क्षण तत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम" ।
(अब रीति वह सुनो, प्रिय जिससे शुभज्ञान'विवेक ज' नामक हो ।
जिसके द्वारा पावन विभूति ऐसी पा सकता साधिक हो ।।
धारणा ध्यान एवं समाधि जब क्षण के प्रति साधित होवे ।।
उस क्षण के सर्व क्रमों में भी जब वह संयम केन्द्रित होवे ।।
तब हो जाता उत्पन्न विवेक ज (सु) विज्ञान, (यह सच मानो)
(जो कहा पतंजलि ऋषिवर ने वह स्वानुभूतियुत शुभ जानो ।।)

159– "जाति लक्षणदेशैरन्यतानवच्छेदात् तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः" ।
(जबकि दो वस्तुएँ तुल्य ही यो रहें–
जाति (या जन्म) से भेद (निश्चय) न हो ।
देश से भी परस्पर अभिन्नत्व–सा
दिखपडे (भेद सु स्पष्ट भासित न हो)
एक जैसी लगे लक्षणों से उभय
कोई अलगाव का भाव लक्षित न हो ।
तब (सु) निश्चय करा जो सके, बस, उसी–
ज्ञान को (योग साधक) विवेकज कहो ।।

160– "तारकंसर्व विषयं सर्वथा विषय–क्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम्" ।
ज्ञान (विवेक–ज) की परिभाषा जिनके द्वारा कृत (अभिराम)।
उन्हीं पतंजलि योगिराज को सत्साधक जन करे प्रणाम ।।
(योगसूत्रयों कहे कि) जा उद्भूत स्वयं होने वाला –

प्रकटे निमित्त के बिना तथा चमके निज प्रभा–विभा द्वारा ।।
करता हो सबको विषय (सर्वथा सबप्रकार) से विषय करे ।
क्रम बिना त्वरित जो एक साथ उपजे प्रतिभाका संग करे ।।
है उसे विवेक ज (प्र) विज्ञान पातंजल दर्शन बतलाता ।
उसकी महिमा भी इंगित से अन कहे रूप में जतलाता ।।

161– "सत्वपुरूषयोः शुद्धिं साम्ये कैवल्यमिति" ।
(कैवल्य अथवा मोक्ष कहते है किसे ? यह जानिये ।
अब हे सुसाधक । परमपद के भाव को अनुमानिये ।।)
हो चित्त एवं पुरूष की जब शुद्धि एक समान ही ।
तब लभ्य है कैवल्य की संप्राप्ति का सम्मान भी ।।
चिति सत्व दोनो शुद्ध हों उस शुद्धि में शुभ साम्य हो ।
ऐसी दशा योगाभिलाषी को न क्यों अतिक्राम्य हो ।।)

(इति विभूतिपादः) (तीसरा पाद समाप्त हुआ)

000–000

चतुर्थ पाद (कैवल्य पाद)

162– "जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः" ।
(सिद्धचित्त के पॉच भेद हैं क्योंकि सिद्धि के पॉच प्रकार ।
(यह कैवल्यपाद का पहला सूत्र, सुनिश्चित करे प्रचार)
पहली सिद्धि जन्म से दूजी औषधि से बतलाई है ।
तीजी, मंत्रो से एवं चौथी तप से दर्शाई है।।
समाधि से उत्पन्न पॉचवाँ भेद सिद्धि का कहा गया ।
(इन पाँचों से सिद्ध चित्त भी पॉच रूप में कहा गया ।।
प्रिय साधक वर इनका शुभ विस्तार स्वानुभव से जानो ।
पावन प्रेरक सु–संकेत हीं केवल तुम इसको मानो ।।)

163- "जात्यन्तर परिणाम :प्रकृत्यापूरात्" ।
(उपादान कारण का जब (विधिवत्) आपूरण होता है ।
(अथवा प्रकृति का भरण होकर शुभ परिवर्तन होता है ।।)
जात्यन्तर परिणाम तभी सचमुच सम्भव बन पाता है ।
एक जाति से अन्य जाति में सिद्ध भी बदल जाता है ।
(इस रहस्य पर क्यों कैसे का उत्तर योगी ही देगा ।
अन्य कौन है सक्षम जो यह गुरू दायित्व-भार लेगा ??)

164- "निमित्त प्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत्" ।
(जो निमित है धर्मादिक वह नही प्रकृतियों का प्रेरक ।
उसे प्रयोजक नहीं कहीं समझें, भूले भी, सत्साधक।।
तथापि, क्षेत्रिक (या किसान) सम उससे वरण-भेद होता।
सभी रूकावट हट जाती हैं, जब निभित्त विकसित होता ।
छिन्न भिन्न हो जाते हैं आचरण शीघ्र, उसके द्वारा।
इसका ही प्रभाव, सिद्धों को कर देता है प्रभु का प्यारा ।।

165- "निर्माण चित्तान्यास्मिता मात्रात् ।"
(अस्मिता मात्र से होते है 'निर्माण-चित्त' इसको जानो ।)
(कितनी इसकी सु-महत्ता है, यह भी, साधक-वर अनुमानो ।।)
(निर्माण-चित्त, उल्लखित पंचविधि है अस्मिताजन्य समझो,
तुम, सच्चे योगी से मिलकर, बूझो इस कठिन पहेली को ।)

166- "प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ।"
(एकाकी चित्त बना करता कितने ही चित्तों का प्रेरक ।
यह प्रवृत्ति भेदों का प्रभाव, करले अनुभव कोई साधक)
ऐसे विभेद में जबकि प्रयोजक होता है योगी का चित्त,
वह रखता है को, तब, प्रेरणा-दान का वित्त ।।

167- "तत्र ध्यान जमनाशयम् ।"
(पांचों निर्माण-सिद्ध चित्तों का वर्णन जो पहले आया ।
जन्मौषधि आदि पांच भेदों में जिनका उद्भव बतालाया ।।)
उन पॉच सिद्ध चित्तों मेसे 'ध्यान-ज' की सर्वोपरि महिमा ।

वह रहे अनाशय अथवा सब वासना रहित, ऐसी गरिमा ।।
(वस्तुतः समाधि, अन्य क्या है, सुस्थायी ध्यान मात्र ही है ।)
जो हो समाधि-(सं) सिद्ध चित्त, उनमें न वासना लेश रहे ।
यह योग सूत्र, उनका महत्व थोड़े में यहाँ अशेष कहें ।।

168- "कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनास्त्रिविधामितरेषाम् ।"
(योगी के होते सदा, सर्व कर्म, निष्काम ।
शुक्ल कृष्ण के भेद का, रहे न जिनमें नाम ।।)
(कालापन बिल्कुल नही, 'अकृष्ण' माने जायें ।
सचमुच वे सब कर्म तो 'अशुक्ल' भी कहलाये ।।)
इतरजनों के हों त्रिविध, कर्म सदैव स-काम ।
क्योंकि साधना के बिना कहाँ सिद्धि अभिराम ।।
योग-रहित के हो त्रिविधि जो सकाम ही कर्म ।
उनके सुनकर नाम ये, परखो व्याख्या-मर्म ।।
'पाप' 'पुण्य' एवं 'उभय-मिश्रित' ऐसे तीन-
कर्म, स-काम, बता रहे टीकाकार प्रवीन ।।
(पातंजल-दर्शन करें केवल शुभ-संकेत ।
स्वानुभूति से सार लें सु-सिद्ध, सिद्धि-निकेत ।।)

169- "ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभि व्यक्तिर्वासनानाम् "
(जो विगत सूत्र में वर्णित है उन तीन सकाम कर्म से ही ।
उनके फल के अनुकूल सदा होती वासनाभिव्यक्ति भी ।।)
(तीनों प्रकार के कर्मों से हों प्रादुर्भूत वासना जो ।
क्यों आनुरूप्य, उन कर्मो के, फल से न सर्वदा उनका हो)

170- "जाति देशकाल व्यवहितानामप्यानन्तर्य स्मृति संस्कारयो रेकरूपत्वात् ।"
(जाति या जन्म कृतं, एक व्यवधान हो,
'देशकृत' दूसरा, 'कालकृत' तीसरा)
वासनाऐं इन्हीं तीन से व्यवहिता
या रूकी सी लगें बाधिता अतितरा ।।
किन्तु फिर भी, नही कोई व्यत्यय पड़े,
नित्यअभिव्यक्ति वे तो दिखाती रहें ।

उक्त व्यवधान–रहितादशा क्यों रहे ।
वह सु–कारण यहाँ ऋषि पंतजलि कहें ।।
जबकि संस्कार, स्मृति, ये उभय, एक ही
रूप में हो छटा निज, प्रकट कर रहें ।
एकरूपत्व सामान्य विषयक रखे,
भेद को सर्वथा हो पृथक् धर रहे ।।
तब कहीं कुछ रूकावट नही रह सके
एक भी कोई व्यवधान बाधक न हो ।
वासनाएँ तनिक भी न हो व्यवहिता
क्योंकि रखती न स्मृति और संस्कार को ।।

171– ''तासामनादित्वं चाशिषों नित्यत्वात् ।''
(स्व–कल्याण की आशिष अथवा इच्छा का नित्यत्व निरन्तर–)
इसी हेतु से अनादित्व भी रहे, वासनाओं का, प्रियतर ।।
यदि अनित्य होती वह इच्छा, तो अनादित रहती न वासना ।
(यह सिद्धान्त समझने को, साधक वर ! कर लो योग–साधना ।)

172– ''हेतु फला श्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषाम् भावेतद्भावः'' ।
(जिनसे पकड़ी जकड़ी रहती सदा वासनाऐं वे सुन लो ।
उन्हीं सहारों के अभाव से उन सबका अभाव भी गुन लो ।।)
सम्यक्तया ग्रहीत, वासनाऐं, रहती हैं जिन चारों से–
अब उनके नामों को जानो योगसूत्र के उच्चारों से ।
पहला 'हेतु' दूसरा 'फल' है तीजा 'आश्रय' मुनिवर कहते ।।
चौथा है 'आलम्बन' बस, ये सभी वासनाओं को गहते ।।
जब इन चारों का अभाव हो, तब वासना कहाॅ रह पावे ।
अहा, वासना–विरहित पावन योगी का यश जनजन गावें ।।

173– ''अतीतानागतं स्वरूपतोअस्त्यध्वभेदाद्धर्माणाम् ।''
(विगत और आगामी, दोनों ही स्वरूप से हैं रहते
क्योंकि काल से धार्मो में होता विभेद यों ऋषि कहते)
बीत चुका जो, वह अतीत है तथा अनागत अभी न आया,
क्यों स्वरूपतः दो ये रहते, यही सूत्र में है समझाया ।।

174- "ते व्यक्तसूक्ष्मगुणात्मानः" ।
(पिछले योगसूत्र में जो उल्लखित, उन्ही धर्मों की महिमा-
यहाँ बताई जाती है इसमें परिभाषा की भी गरिमा ।।)
प्रकट, सूक्ष्म, दोनों प्रकार के, गुणस्वरूप वे धर्म, सर्वदा-
योग साधना से मिल पाती, उन धर्मों की मर्म-सम्पदा ।।

175- "परिणामैकत्वाद्वस्तुतत्वम् ।"
(परिणाम के एकत्व से हो वस्तुओं की एकता ।
इस तत्व का ऋषिवर पतंजलि दे रहे कृपया पता ।।)
(सोदाहरण इसको समझकर सिद्धजन से जानिये ।
साधक-प्रवर ! अनुभूति द्वारा मर्म यह पहचानिये ।।)

176- "वस्तुसाम्येचित्तभेदात्तयोर्विभक्तः पन्था ।"
(अलग अलग है पन्थ, चित्त के और वस्तु के, यह जानों ।
हे साधक-वर वस्तु साम्य होने पर भी विभक्त मानो ।।)
कारण यही कि चित्तों में भेदों का रहता भाव सदा ।
फिर क्यों न चित्त एवं पदार्थ में बना रहे अलगाव सदा ।।
वस्तु भले ही एक्य-युक्त हों, मार्ग पृथक् ही रहते है ।
चित्त-भेद होने से हैं, दो विभिन्न यों ऋषि कहते है ।

177- "न चैकचित्त तन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात् ।"
(ग्राह्य वस्तु रहती न कभी भी एक चित्त के ही आधीन ।
ऐसा उनका निर्णय है, जो योगसिद्धि में थे लवलीन ।।)
कहा चित्त को यहाँ 'प्रमाणक' योगसूत्र निर्माता ने ।
तर्क युक्ति से उक्त उक्ति समझाई बोध-प्रदाता ने ।।
होगी बिना प्रमाणक ही के तब वह वस्तु मात्र ही क्या ?
(सचमुच कुछ भी नहीं उस समय वह रहले, समझो ऐसा ।
इस रहस्य को हे साधक-वर बता सकेगें योगी-जन ।
स्वयं साधना के द्वारा भी इसका हो सम्यग्-दर्शन ।।)

178- "तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाता ज्ञातम्।"
(चित्त को वस्तु के जानने में सदा-
यह अपेक्षित कि 'उपराग' उसका रहे ।
यदि कहीं अन्यथा हो विरहिता दशा
तो वही वस्तु 'अज्ञात' संज्ञा गहे ।।)
जब विषय का पड़े चित्त में सर्वथा-
पूर्ण प्रतिबिम्ब, तब वह अवस्था बने ।
'योग' में पारिभाषिक उसी के लिये
शब्द 'उपराग' है क्यों न साधक गुने ?
वस्तु, उपराग में, चित्त को ज्ञात हो,
वह न हो तो रहे नित्य अज्ञात ही ।
बात कितने पते की, अनूठी यहॉ-
मुनि पतंजलि परम सिद्ध ने यह कही ।।

179- "सदाज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत् प्रभोः पुरूषस्यापरिणामित्वात् ।"
(चित्तवृत्तियों का ज्ञाता सर्वदा रहे उनका स्वामी ।
क्योंकि 'पुरूष' संज्ञा वाला वह रहता नित्य अपरिणामी ।।
सचमुच, उसी चित्त के 'प्रभु' की, महिमा, गरिमा गाई है ।
योगशास्त्र ने वृत्ति ज्ञान की उसमें भूति बताई है ।।)

180- "न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात् ।"
(चित्त को स्वाभास अथवा स्वतः प्रकाश कभी न किन्चित्मात्र समझो ।
हे सु-स्राधक ! दृश्य ही मानो उसे भ्रमजाल में ब्रिल्कुल न उलझो ।।)
दृश्य है, बस, इसलिये ही वह स्वयं ज्योतित नही है ।
चिति रखे सच्ची महत्ता, उसी की द्युति सब कहीं है ।।

181- "एक समये चोभयानवधारणम्।"
('विषय' 'चित्त' इन उभय का एक समय में ज्ञान
कभी न सम्भव हो सके, बरनै सिद्धि-निधान ।।)

182- "चित्तान्तरदृश्ये बुद्धि बुद्धेरतिप्रसंगः स्मृतिसंकरश्च"
(यदि कहो कि पहला चित्त, दूसरे का है दृश्यरूप केवल ।

उस एक ज्ञान की भी समाप्ति उस दशा में नहीं शक्य रहे
(शास्त्रीय रीति से 'अनवस्था–दोष' ही उसे वर विज्ञ कहे ।।)
संस्मृतियों की संकरता भी अनिवार्यतया हो जाएगी ।
अर्थात् कौनसी किसकी स्मृति है, पता नहीं चिति पाएगी ।।
संस्मृति–सांकर्यभाव–दूषित यह अनवस्था की हेयदशा ।
विभ्रम से कैसे भुगतेगी चितिदेवी, बन दीना, विवंशा ।।

183– "चिन्तेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्व बुद्धि संवेदनम् ।"
(अपना विषयभूत हो जो निज चित्त उसे तब चिति जानें ।
जब निज प्रतिबिम्बित (सु) चित्त की आकृतिसम ही आकृति ठाने ।।)
ये चिति या पुरूष सदैव क्रिया (किंवा परिणाम रहित रहते ।)
जब तदाकार–संप्राप्ति हो सके तब ही चित्त बोध गहते ।।
कहा पतंजलि योगीवर ने यह स्वबुद्धि–संयोजन है ।
चिति को चित्ताकृति–समता देती वैसा प्रतिबोधन है ।।

184– "दृष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ।"
(सर्वार्थ चित्त कहते उसको जौ सब आकारों वाला हो ।
जब दृष्टा दृश्य, उभय, से हो वह रंगा हुआ, तब ऐसा हो ।।
ऊपर जो दृष्टा और दृश्य के शुभ वर्णन कर आये हैं ।
उनकी संस्मृति कर लो, साधक ! इंगित से, वे बतलाये हैं ।।
'उपरक्त' कहा है 'रंगे हुए' को सूत्रात्मक यह वाणी है ।
पातंजलदर्शन में वर्णित प्रिय परिभाषा कल्याणी है ।।
इसका सम्यक सुबोध तो है अनुभूतिगम्य ही, सच जानों ।
सिद्धान्त रूप से, प्राज्ञ पतंजलि जो कहते यथार्थ मानो ।।)

185– "तद संख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थ संहत्यकारित्वात् ।"
(वे यद्यपि असंख्येय अथवा अगणित वासना चित्त में हो ।
वह तथापि यों है परार्थ ही शय्या भवनादिक सब हों ज्यों ।।
उसको (प्र) वासनाएँ इतनी सारी चित्रित ही भले रखें ।
फिर भी, उसकी अन्यों के हित सब ही प्रवृत्तियाँ सदा दिखें ।
कारण है यही कि सत्व, रजस औ तमोगुणों की है रॉगरेल ।
ये अगांगीभाव से मिलें, सत्वप्रधान बने वह मेल ।।
इस प्रकार का योग्य सम्मिलन, उत्तम चित्त बना पाता ।

किन्तु मेल वाले पदार्थ का नही स्वभाव कहीं जाता ।।
जो कई पदार्थो से मिलकर कोई पदार्थ बनता देखो ।
वह नही स्वयं के लिये वरन् उसको परार्थ रहता पेखो ।
(पर्यंक और गृह प्रभृति सर्व संहत्यकारिता–धारी हैं ।
इसलिये भिन्न जो उनसे हो उसको ही वे उपकारी हैं ।।
जब समुचित मेलमात्र से निर्मित चित्त, स्वतः को तब क्यों हो ।
चिति के भोगापवर्ग में ही क्यों न रखे न सब प्रवृत्तियों को ।
इस योगसूत्र में बड़ी गूढ़ बतलाई बात, पते की है ।
पातंजल–दर्शन के द्वारा यह ऋषि की दया अनूठी है ।।

186– "विशेषदर्शिनः आत्मभाव भावना विनिवृत्तिः ।
(चिति और चित्त में जो अन्तर, उसको 'विशेषदर्शी' लखता ।
संसिद्ध, विवेकख्याति द्वारा, वह वरदा सिद्धि–सुधा चखता ।।)
मैं कोन और क्या हूँ ऐसी जो आत्मभाव, भावना रहें–
उनकी विनिवृत्ति हुआ करती यों प्राज्ञ पतंजलि यहाँ कहें ।।
कब, कैसे, किसे मिले क्षमता वैसी की भेद यह देख सके–
जो चित्त पुरूष दोनों में है भिन्नता उसे अवलोक सके।
इन सब पृच्छाओं के उत्तर पांतजल–दर्शन में पाओ ।।
हे साधक वर ! साधना, स–विधिं, करके सुसिद्ध तुम बन जाओ ।।

187– "तदा विवेक निम्नं कैवल्य प्राम्भारं चित्तम् ।"
(जो विगत सूत्र में वर्णित है वैसवा विशेष दर्शन जब हो ।
कैवल्य साध्य के अभिमुख ही ऐसा उत्तम साधक तब हो ।।
उस विशेषदर्शी का सु–चित्त रहता विवेक–मग–संचारी ।
सचमुच वह तो बन पाता है कैवल्य प्राप्ति का अधिकारी ।।)

188– "ताच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ।"
(बीच बीच में उदित अन्य भी होती हैं व्युत्थान–वृत्तियाँ ।
उसी विवेक–ज (सु) विज्ञान में छिद्रो सम जिनकी प्रवृत्तिया ।।
पहले के संस्कारों से ही उनका उदय हुआ करता है ।
उन्ही वृत्तियों से सु–साधना में कुछ विघ्न पड़ा करता है ।।

189– "हानिमेषां क्लेशवदुक्तम् ।"
(क्लेशों की निवृत्ति के सम ही व्युत्थानों के संस्कारों का
करे निवाहरण सत्साधक, यों पांतजल दर्शन बतलाता ।।
उसके 'साधन पाद' में कहे जो उत्तम उपाय, सब वे ही
दशवें ग्यारहे सूत्रों वाले, समझों सदुक्त इनके भी ।।)

190– "प्रसंख्याने अप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेक ख्यातेर्धर्ममेघ समाधिः" ।
('प्रसंख्यान' (सु) ज्ञान तक भी न जिसे अनुरक्त रख सके ।
(वरन् विरक्त रहे उसे भी, वह योगी ही सिद्ध बन सके ।।)
उसमें उदय विवेक ख्याति का होता रहता नित्य निरन्तर ।
'धर्म–मेघ' नामक समाधि का उसे लाभ मिलता (अति शुचितर)
ऐसे उच्चदशा को पाना किस प्रकार सम्भव हो जाता ?
यह तो केवल स्वांनुभूति वाला सुसिद्ध कुछ कुछ कह पाता ।।)

191– "ततः क्लेशकर्म निवृत्तिः" ।
(पिछले योगसूत्र में जिसका वर्णन है अतिशय अभिराम ।
धर्ममेघ वह समाधि कैसा लाती है (सुनलो) परिणाम ।।
पाँचों क्लेशों की निवृत्ति पहला फल है (ऐसा जानो) ।
तीनों ही स–काम कर्मो का हटना, दूजा फल मानो ।।
(अशुभ और शुभ तथा शुभाशुभ मिश्रित कर्म, स–काम कहे ।
उन सब का हो पूर्ण निवारण, योगी इनसे अलग रहे ।।
क्लेश, कर्म की निवृत्तिरूपी ये दोनों परिणाम पुतीत ।
धर्म–मेघ संज्ञक समाधि से बने सिद्ध के निकट सु–नीत ।।)

192– "तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्या ज्ञेय–मल्पम्" ।
(ज़ब सारे ही क्लेश तथा सब कर्मो का क्षय हो जाता है ।
तब तो ज्ञेय पदार्थ अल्प रह जाते हैं (गौरव आता है ।।)
सर्वआवरण रूप मलो से रहित, शुद्ध होकर जब चमके ।
चित्तरूप अनुपम (सु) ज्योतिकी अनन्तता अतिशय जब दमके ।।
वस्तु जाननेयोग्य, भला तब क्यों न न्यूनसंख्या में रहलें ?
क्लेश, कर्म के क्षय सु–काल में उसको सिद्ध क्यों न सब कह दें ??
(हाँ वह परम विज्ञ–सा बनता जो इतना ऊँचा चढ पावे ।
क्रमशः सत्साधक ही तो विधिवत चलता रहकर बढ़ जावे ।।)

193- "ततः कृतार्थानां परिणाम क्रम समाप्ति र्गुणानाम" ।

(जबकि पुरूष का भोग तथा अपवर्ग प्रयोजन सध जावे ।
और जब उसे योगसिद्धि–वरदान सु–पावन मिले पावे ।।
तभी कृतार्थ हुए गुणगण के परिणामों का क्रम टूटे ।
ज्यों ही उस क्रम की समाप्ति हो त्यों ही भव बंधन छूटे ।।
तब उस योगी के प्रति रहले देहेन्द्रिय आरम्भ नहीं ।
तब ही गुण परिणाम क्रर्मो को मिले न कुछ अवलंब कहीं ।।)

194- "क्षण प्रतियोगी परिणामोंपरान्त निर्ग्राह्यः क्रमः" ।

(लो, विगत सूत्र में है जिसका उल्लेख, उसी क्रम को जानो
(इस परिभाषा के प्रकाश में शुचि सच्ची संस्थिति पहचानो ।।)
क्षण प्रतियोगी अथवा प्रतिपल होने वाली जो अविकल हो ।
परिणाम समाप्ति समय पर जो जानी जा सकती अविरल हो ।।
गुण गण की वही विशेष दशा 'क्रम' कहलाती है, सुनो, सखे ।
केवल योगी इसकी समाप्ति का गौरवमय सामर्थ्य रखे ।।)

195- "पुरूषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूप प्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति" ।

(योगी पतंजलि के वचन को हे सु–साधक ! मानिये ।)
कैवल्य कहते हैं किसे ? अब अन्त में यह जानिये ।।
जब शून्य बन पुरूषार्थ से गुण हों स्व–कारण में विलीन ।।
कैवल्य बतलाते उसे तब ही महायुनिवर अदीन ।।
चितिशक्ति की निज रूप में अथवा अवस्थिति हो जहॉं ।
कैवल्य का अस्तित्व अपने आप हो जाता वहाँ।।
ये उभय वैकल्पिक (सु) लक्षण पूर्णतः पहचानिये ।
इनकी महत्ता को स्वयम् अनुभूति से अनुमानिये ।।

(इति कैवल्य पादः)(चौथा पाद समाप्त हुआ)

(पातंजल योग दर्शन का पद्यानुवाद अर्थात् हिन्दी पद्यमय पातंजल प्रवचन' समाप्त हुआ)

000-000

परिचय–रेखा

नाम – रामनारायण माथुर 'पीड़ित' परवर्ती स्वामी ओ३म् प्रेमी

जन्म – राम नवमी सन् 1919 शाजापुर – मालवा

पिता – सूर्यप्रसाद चौधरी वकील, जमींदार, आर्य समाज के कर्मठ कार्यकर्ता, हिन्दी, उर्दू, संस्कृत में विद्वान, प्रसिद्ध वक्ता एवं शायर, परवर्ती जीवन में आर्य सन्यासी स्वामी सूर्यानन्द सरस्वती होकर प्रचार कार्य में संलग्न निधन 1/1/1960

माता – भक्तिभाव प्रवण श्रीमती सुन्दरबाई निधन 2/8/1936

पत्नी – इन्दिरा देवी के साथ 17/5/1937 को वैदिक विधि से परिणय संस्कार (निधन दि. 28/8/2005)

शैक्षिक – मेट्रिक के पश्चात् स्वरूचि न होने पर भी ग्वालियर स्टेट की वकालत परीक्षा पास कर लगभग 35 वर्षों तक वकालत की किन्तु स्वाध्यायशील प्रवृति के कारण संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी के अनेक ग्रन्थों का सतत अध्ययन, चिंतन मनन। किशोरावस्था ही से स्वभाविक अभिरूचि के अनुसार जीवनपर्यंत अनवरत साहित्य सृजन। चिंतन, प्रवचन, संगीत, आसन प्राणायाम–व्यायाम में भी विशेष रूचि।

महत्वपूर्ण कार्य– आर्य समाज के विद्वान् एवं कर्मठ कार्यकर्ता, नगर की हिन्दी साहित्य समिति की स्थापना, विभिन्न साहित्यक आयोजनों का संचालन, श्रीकृष्ण व्यायाम शाला के सक्रिय सदस्य, माधव रजत जयंती वाचनालय के अध्यक्ष, स्वाधीनता संग्राम के प्रच्छन्न सहयोगी सैनिक, 17/5/76 को वकालत परित्याग, 29/9/81 को सहचरी सहित चतुर्थाश्रम ग्रहण कर अन्तिम दशक गुरूकुल होशंगाबाद में व्यतीत।

राष्ट्रीय सामाजिक ऐतिहासिक और आध्यात्मिक भावों में परिपूर्ण मौलिक तथा अनूदित रचनाओं का विशाल काव्य भण्डार

निधन – 9/9/1990 मातृभूमि शाजापुर में।

कवि- ओ३म् प्रेमी द्वारा रचित

पद्यात्मक साहित्य:–

चतुर्वेदानुवाद चारु पद्यमाला–यजुर्पद्यकुसुमगुच्छ, (सम्पूर्ण यजुर्वेद का पद्यानुवाद), ऋग्वेदीय राग–रंग, अथर्व अमृतालाप, अथर्व प्रसून गुच्छ साम संगीतिका, सोम संगीत, यजुर्विनय गीतिका एवं ऋग्विनय गीतिका (आर्याभिविनय का प्रकाशित पद्यानुवाद), श्रुति सूक्ति संगीता, शतपथ सूक्ति संगीता, सुपद्यीकृत शारीरिकोपनिषद, पद्यमयी पंचसहयज्ञविधि, वैदिक ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्योपासन पद्यानुवाद) परा पूजा, पातंजलप्रवचन, ओ३म् प्रेमी शुद्धा गीता, ध्यान योग तत्व बोध, परार्थ प्रकाश, भर्तृहरि शतक नवनीत, चाणक्य नीति नवनीत, योग वासिष्ठ नवनीत, अंतरूक्तियाँ, ओ३म् प्रेमी, आलाप, मनुष्यपन रूप धर्म प्रवचनं संग्रह, आत्मोपनिषदीय आर्यभाषाऽलाप, प्रवैदिक पावन प्रसाद (प्रकाशित), श्रद्धा कल्याण मयीवरदा (प्रकाशित)

प्रबन्ध काव्य:–

हिनदी पद्यमय वालमीकि रामायण, महाभारत मूलक श्री कृष्ण संस्मरण, मांडवी महाशया (प्रकाशित), सत्यनारायण तत्वकथा (प्रकाशित), रेक्वपर्णा की रानी, पाषाणी से पुनः मानुषी, गौरवशालिनी गौतमी, पृथा से कुन्ती, आर्या अंजनादेवी, वर्णसंकर प्रवर श्रवणकुमार, धात्री माता रत्ना, उपेक्षिता उमा कुमारी, वीर सुता रत्ना, वीरांगना पद्मा, वीरांगना महारानी धर्म कौर क्रांति सहयोगिनी स्वर्णलता, हिम्मत की पुतली भारत भक्तिमयी नूर खातून, पतिपरायणा जसमा, साहसमयी कला प्रवीणा कस्तूरा, पर द्रोहिणी मागदा और उसका द्वीप, धीमती श्रीमती शकुन्तला देवी, प्रवियिनी पायलेट चावमरी चारु चन्दा, धुन का धनी, धनंजय कुलकर्णी, साहसिक सामूहिक आत्म बलिदान, प्रीति परीक्षिता हीराबाई, व्याख्यान विशारदा सुश्री शिवाजी, जयप्रकाश द्वारा प्रकाशजय, देवी जीवन दिव्या।

स्फुट पद्य रचनाऐं:–

पीड़ित प्रणयन (भाग 1,2,3), कविता कलाप कुंज, गृहणी गौरव गाथा भूल के शूल यों धूल में दो मिला, परस्परतंत्र रहे, स्वरचित काव्य संग्रह, साधना की बाधना कैसे हटे, भगवान का भरोसा, मानव कल्याणकारी गायन संग्रह (प्रकाशित), भव्य भावांजलि, पुष्पोद्यान चयनिका, (गुलिस्तां का पद्यानुवाद), मेरे मंजूम खयालात, मेरी तस्नीफ की कैफियत।

गद्यांकन:–

मांडवी महोदया, गद्यगली गमन, रामले की रामा, ओ३म् प्रेमी स्मृति, सीता राखी सौजन्यमयी सरमा, आकस्मिक अंकन, मानवीय विचार, दैनन्दिनी (आत्मावलोकन), तथा गद्यपद्यात्मक अन्य विभिन्न रचनाऐं।

सम्पर्क सूत्र:– जीवन आर्य अथवा रांजनारायण चौधरी

से.नि. व्याख्यता, 27 चित्रगुप्त मार्ग, शाजापुर म.प्र. 465001